ज्ञानामृत

अगस्त, 1988
वर्ष 24 ❋ अंक 2

मूल्य 1.75

शिमला में महामहिम राष्ट्रपति आर० वेंकट रामन के आगमन पर ब्र० कु० अरुणा बहन उन्हें ईश्वरीय सौगात भेंट कर रही हैं।

मण्डी (हि० प्र०) में आयोजित एक स्नेह मिलन कार्यक्रम में स्थानीय विधायक भ्राता दुर्गादत्त जी को प्रसाद देते हुए दादी प्रकाशमणि जी।

स्तर—आरापुर गीता-पाठशाला में ब्र० कु० ओमप्रकाश, प्रदेशक, इन्दौर जोन के पधारने पर उनके स्वागत में एक नृत्य प्रस्तुत किया जा रहा है।

मनाली (हि० प्र०) में 'आध्यात्मिक संग्रहालय' के उद्घाटन समारोह में मंच पर उपस्थित हैं (बाएं से) भ्राता जी० डी० खोसला, भू० पू० मुख्य न्यायाधीश, ब्र० कु० दादी प्रकाशमणि जी तथा अन्य।

बम्बई (गामदेवी) –ई० वि० वि० द्वारा संचालित 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना से अति विशिष्ट व्यक्तियों को अवगत कराया गया। चित्र में (बाएं से) ब्र० कु० कुसुम बहन भ्राता शरद पंवार, मुख्यमंत्री, महाराष्ट्र, भ्राता अटल बिहारी वाजपेयी, भ्राता रामकिशन बजाज : सिने अभिनेता भ्राता सुनील दत्त को इस अद्भुत योजना से अवगत कराते हुए।

भुवनेश्वर—उड़ीसा के वन एवं पर्यावरण मंत्री भ्राता दमबरुधर उल्का को 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना से अवगत कराती हुई ब्र० कु० कुमुद बहन।

माऊण्ट आबू—ई० वि० वि० के मुख्यालय 'पाण्डव भवन' में ब्र० कु० रमेश जी के कार्यालय का उद्घाटन करती हुई दादी प्रकाशमणि जी तथा दादी जानकी जी।

मेरठ -सेवाकेन्द्र संचालिका ब्र० कु० दादी कमलसुन्दरी जी सरधना में गीता-पाठशाला का उद्घाटन करते हुए।

भुवनेश्वर में आयोजित 'आध्यात्मिक प्रदर्शनी' का उद्घाटन ब्र० कु० दादी निर्मलशान्ता जी टेप काटकर करते हुए।

बावणगेरी—'सुखमय संसार बनाने में व्यापारी एवं उद्योगपति वर्ग का सहयोग' विषय पर आयोजित कार्यक्रम का उद्घाटन दृश्य।

परतवाड़ा में गीता-पाठशाला के उद्घाटन के अवसर पर उपस्थित भाई-बहनें गीता-ज्ञान दाता शिवबाबा की याद में खड़े हैं।

Regd No. 10563/65-D. (E)—70

मद्रास—तमिलनाडु राज्य के राज्यपाल महामहिम पी० सी० एलेक्जेंडर को 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना से अवगत कराते हुए ब्र० कु० लक्ष्मी बहन।

अम्बाला (शहर)—हरियाणा के राजस्व मंत्री भ्राता सूरजभान जी तथा अन्य को आध्यात्मिक प्रदर्शनी का अवलोकन कराती हुई ब्र० कु० सरोज बहन ।

म्बई (गामदेवी)—सिक्कम के भू० पू० राज्यपाल तथा मेनारिटी मीशन के सदस्य भ्राता जे० एच० तेलियर खान को संग्रहालय में चित्रों पर व्याख्या देती हुई ब्र० कु० कुसुम बहन

शेवगाँव—'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' योजना के अन्तर्गत आयोजित समारोह में भ्राता एस० वी० कुलकर्णी, प्रधानाचार्य जी अपने विचार व्यक्त करते हुए।

पानीपत में सेवाकेन्द्र के नये भवन के उद्घाटन समारोह में प्रवचन करती हुई दादी प्रकाशमणि जी।

मनाली—लेफ्टीनेंट जनरल भ्राता विजय कुमार जी तथा अन्य ई० वि० वि० की मुख्य प्रशासिका ब्र० कु० दादी प्रकाशमणि जी के साथ दिखाई दे रहे हैं।

अमृत-सूची

१.	आओ, हम सब अतीन्द्रिय सुख में रहने की प्रतिज्ञा करें	१	९.	यह संसार स्मृति–विस्मृति का खेल है	१९
२.	हर्ष और संघर्ष (सम्पादकीय)	२	१०.	तनावमुक्त जीवन	२०
३.	शब्दों का महत्त्व	४	११.	युवा जागो और जगाओ !	२१
४.	ईश्वरीय प्यार–योग का आधार	५	१२.	अबके बरस	२७
५.	धन कमाओ परन्तु कैसे?	८	१३.	जागो, युवा जागो	२७
६.	आओ बांधे सतरंगी राखी	१३	१४.	क्या महाभारत काल आ गया है?	२८
७.	चले फरिश्ते मधुबन से	१५	१५.	रक्षाबन्धन अनोखा कंगन	३०
८.	सचित्र समाचार	१८	१६.	सचित्र सेवा समाचार	३१
			१७.	'ओ०के०,' 'टा-टा.'	३२

"आओ, हम सब अतीन्द्रिय सुख में रहने की प्रतिज्ञा करें"

अब तो हम सबको सहयोगी बनकर सुखमय संसार बनाना ही है और इसी सहयोग की निशानी, पवित्रता का सूचक रक्षाबंधन का पर्व हम सबको सदा पवित्र बनाए अतीन्द्रिय सुख में रहने की याद दिलाता है। तो आओ, हम सब मिलकर विशेष अतीन्द्रिय सुख में रहने और सबको उसी अपार सुख का सहयोग देने वा सहयोग लेने का आज से ही दृढ़ संकल्प लें और सदाकाल अतीन्द्रिय सुख में रहने के लिए प्रतिज्ञा करें कि–

- इन्द्रियों के आकर्षण से परे रह सदा आत्मिक दृष्टि और वृति रखेंगे।
- परमात्मा के और सर्व आत्माओं के दिल की दुआयें लेते रहेंगे। सबको सन्तुष्ट करेंगे और सदा सन्तुष्ट रहेंगे।
- वाचा पर पूरा ध्यान दे, हर बोल अनमोल, मर्यादायुक्त, युक्तियुक्त और मधुर बोलेंगे।
- व्यर्थ बातों के चिन्तन वर्णन में अपना अमूल्य समय श्वाँस और संकल्प रूपी सम्पत्ति व्यर्थ नहीं गँवायेंगे, बल्कि मुख से सदा ज्ञान रत्न ही निकालेंगे।
- सदा हर आत्मा के प्रति और अनेक प्रकार की भावनायें परिवर्तन कर एक शुभ चिन्तक की भावना रखेंगे। सर्व को स्वयं से तथा सेवा में आगे बढ़ाने, आगे रखने का श्रेष्ठ सहयोग सदा देते रहेंगे।
- सदा बीती बातों को बिन्दी लगाए बिन्दी बन विश्व को अपनी श्रेष्ठ भावना, श्रेष्ठ कामना, समर्थ बनाने की भावना की किरणों से रोशनी देते रहेंगे।

–दादी प्रकाशमणि जी, मुख्य प्रशासिका, ई० वि० वि०

- आसक्तियों का त्याग कर इच्छा मात्रम् अविद्या रहेंगे।
- जिन बातों से अपना काम नहीं, उनका चिंतन छोड़, देखते हुए न देखने, सुनते हुए न सुनने की शक्तियां धारण करेंगे। किसी भी बात में स्वयं को विचलित नहीं करेंगे।
- सदा अन्तर्मुखी रहेंगे और समय निकाल एकान्त में अपने आपसे बातें करेंगे।
- परमात्म-बाप के द्वारा मिले हुए वरदानी समय अमृतवेले कोई न कोई नया अनुभव कर उस समय को सफल बनायेंगे तथा प्रतिदिन ज्ञान रत्नों का गहराई से अध्ययन कर नये-नये अनुभव करेंगे।

हर्ष और संघर्ष

हर्ष और उल्लास-ये दोनों योगी जीवन के चिह्न हैं। योगी सदा अतीन्द्रिय सुख में रहता है और मन में कोई ऋणात्मक विचार (Negetive thoughts) न होने के कारण उसका सदा उल्लास भी बना रहता है। परन्तु किसी ने कहा है कि यह जीवन एक संग्राम है। इसमें मनुष्य के सामने ऐसी परिस्थितियां आती रहती हैं जो संघर्ष पैदा कर देती हैं। कोई व्यक्ति चाहे कितना भी ये इरादा रखे कि उसका जीवन संघर्ष-रहित बना रहे तो भी ऐसे हालात पैदा हो जाते हैं जो उसे खींचकर संघर्ष में ले जाते हैं। किसी के जीवन में कम संघर्ष होता है और अन्य किसी के जीवन मेंअधिक। परन्तु संघर्ष से पूर्णतः रहित जीवन इस कलिकाल में किसी का भी नहीं होता। योगी उपरामचित्त, न्यारा और प्यारा, शान्ति में स्थित अथवा शान्ति की स्थिति का अभ्यासी होने के कारण सांसारिक संघर्ष के भंवर से प्रायः काफी हद तक निकल ही जाता है। अधिक इच्छायें न होने के कारण भी उसके जीवन में दूसरों से टकराव की परिस्थिति कम आती है। परन्तु फिर भी जब वो समाज के सम्पर्क में आता है, कार्यक्षेत्र में उतरता है, किसी संगठन के बीच रहता है तो बहुत से ऐसे लोगों से उसका व्यवहार जुट जाता है जो अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी, सत्तालोभी, सम्मानापेक्षी होते हैं। ऐसी स्थिति में संघर्ष ठीक वैसे ही उत्पन्न हो जाता है जैसे कि कोई व्यक्ति स्वयं तो अपनी कार को ठीक रास्ते पर, ठीक गति से और ठीक तरह से ले जा रहा हो परन्तु दूसरा कोई मदिरा के नशे के कारण, गाड़ी की ब्रेक के खराब होने के कारण, नींद की हालत के कारण या व्यर्थ बातों में लगे होने से असावधानी के कारण उसकी कार में अपना ट्रक अथवा अपनी कार पीछे से दे मारता है या सामने से बेतहाशा कार से आते हुये टकरा देता है और प्रथम व्यक्ति का दोष न होने पर भी उसे दुर्घटनाग्रस्त कर देता है!

ऊपर हमने जो उदाहरण दिया है, केवल कुछ ही संघर्ष इस प्रकार के होते हैं जिनमें कि सारा दोष केवल एक ही पक्ष का होता है, और दूसरा पक्ष अथवा दूसरा व्यक्ति पूर्णतः निर्दोष होता है वर्ना प्रायः यह देखा जाता है कि दोनों ही पक्षों का थोड़ा-बहुत दोष होता है, दोनों ही ओर से किस न किसी दिव्य गुण की धारणा की कमी के कारण संघर्ष उत्पन्न होता है। कम-से-कम ऐसा तो जरूर देखने में आता है कि एक ओर तो किसी दिव्य गुण का अभाव होता है परन्तु दूसरी ओर दिव्य गुण का अभाव न भी हो तो प्रथम व्यक्ति के दिव्य गुण के अभाव को मिटाने या उसका सामना करने की क्षमता, शक्ति, युक्ति अथवा विधि का अभाव होता है। कभी भी कोई भी संघर्ष दिव्य गुण के अभाव या उसे मिटाने की क्षमता के बिना न शुरू होता है और न बना रहता है और न पीड़ोत्पादक होता है।

उपाय

प्रश्न उठता है कि संघर्ष को कैसे समाप्त किया जाये अथवा यदि वे समाप्त नहीं हो सकते तो उन्हें न्यूनतम की स्टेज पर कैसे लाया जाये?

स्पष्ट है कि जब किसी-न-किसी दिव्य गुण का अभाव ही संघर्ष का मूल है तो उस दिव्य गुण की पुनः धारणा अथवा उसमें वृद्धि ही संघर्ष को कम करने का श्रेष्ठतम उपाय है। इस संसार को 'देवासुर संग्राम की उपमा दी गई है। आसुरी लक्षणों को दैवी लक्षणों से ही पराजित किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति हमसे अपमानजनक व्यवहार करता है तो हम उसका सम्मान करते रहने के कर्त्तव्य द्वारा ही उसे ठीक रास्ते पर ला सकते हैं। यदि कोई हमसे कटु बोलता है तो हम अपनी मधुर वाणी से ही उसकी अन्तर्चेतना को जागृत करके उसमें ये एहसास पैदा कर सकते हैं कि वो हमसे ठीक व्यवहार नहीं कर रहा और कि वो अब हमसे मीठा बोला करे।

धीरज और सहनशीलता की विशेष आवश्यकता

ये तो हम बता आये हैं कि जब किन्ही दो व्यक्तियों में संघर्ष होता है तो उसका मूल कारण प्रायः दोनों में किसी-न-किसी दिव्य गुण का अभाव होता है। परन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि एक व्यक्ति में अधिक दिव्य गुणों का अभाव होता है और दूसरे में प्रथम की तुलना में केवल एक-आध दिव्य गुण का अभाव होता है। जैसे मान लीजिए कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से ईर्ष्या रखता है। दूसरे को मान मिलते हुये देखकर उसके मन में डाह उत्पन्न होता है। ईर्ष्या से द्वेष, घृणा, कटुता, आक्रोश आदि उत्पन्न हो जाते हैं और इन सबका परिणाम ये होता है कि वो व्यक्ति उस दूसरे व्यक्ति से तेज-तर्रार शब्दों में बोलता है, उसकी हर बात से असहमति प्रकट करता है, उससे रुष्ट रहता है, उसे नीचा दिखाने की कोशिश में लगा रहता है और उसकी अगर थोड़ी भी कमी हो तो दूसरों को बढ़ा-चढ़ाकर उसके विषय में बताता है ताकि लोग जो उसका सम्मान करते हैं वो न किया करें। इस प्रकार स्नेह अथवा शुभभावना-शुभकामना रूपी दिव्य गुणों के अभाव के कारण

इतने सारे आसुरी लक्षण पैदा हो जाते हैं और उन सबसे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

दूसरे व्यक्ति में ईर्ष्या, द्वेष, आक्रोश आदि नहीं होते। वह प्रथम व्यक्ति के ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आक्रोश, दुर्व्यवहार आदि को बर्दाश्त करता चला जाता है। वह गम्भीरता और सहनशीलता नामक दिव्य गुणों को व्यवहार में लाता है। चुप रहकर हर बात को पी जाता है। वह अपमान, दुर्व्यवहार इत्यादि की परवाह न करते हुये प्रभु भरोसे चला चलता है। इस आशा से कि थोड़े समय में बुराई का अन्त हो जायेगा और सच्चाई तथा भलाई सामने आ जायेगी, वो मर्यादापूर्वक अपने व्यवहार को ठीक बनाये रखने की कोशिश करता है। परन्तु जब कई वर्षों तक ऐसी परिस्थिति बनी रहती है और प्रथम व्यक्ति को न कोई समझाने वाला, न कोई रोकने वाला होता है और न ही कोई आशा बँधाता है और न ही प्रथम व्यक्ति के अपने परिवर्तन के कोई चिह्न दिखाई पड़ते हैं, बल्कि दिनों-दिन उसकी ईर्ष्या, महत्त्वाकांक्षा और उसके व्यवहार में अभद्रता बढ़ती ही जाती है, तब फिर दूसरे व्यक्ति को विचार आता है कि वो कब तक प्रथम व्यक्ति के अमानवीय व्यवहार को सहन करता जायेगा?

स्पष्ट है कि इस उपरोक्त उदाहरण में प्रथम व्यक्ति में अधिक दिव्य गुणों का अभाव है परन्तु दूसरे व्यक्ति के बारे में भी यह कहा जा सकता है कि यद्यपि वो सहन करता आया है परन्तु अब तो परिस्थिति उसकी सहनशीलता को पछाड़ रही है, अर्थात् अब तो उसके सहनशीलता रूपी दिव्य गुण में सीमा अथवा हद आने लगी है। इसे यदि "दिव्यगुण" (सहनशीलता) का अभाव न भी कहा जाये तो भी इसे सहनशीलता की महानतम पराकाष्ठा तो नहीं कहेंगे। इसके अतिरिक्त, दूसरे व्यक्ति के विषय में ये भी तो कहा जायेगा कि यद्यपि उसने कई वर्षों तक धीरज रखा परन्तु अब उसके धीरज की सीमा पहुंच गई है। इस प्रकार के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघर्ष की सभी परिस्थितियों में **धीरज** और **सहनशीलता** की आवश्यकता होती है। इन दो दिव्य गुणों की हरेक की अपनी सीमा होने के कारण एक समय ऐसा आ पहुंचता है जबकि परिस्थिति विस्फोटक बिन्दु तक पहुंच जाती है।

संघर्ष की ऐसी स्थिति में क्या किया जाये?

शिवबाबा ने तो यही शिक्षा दी है कि हमारी सहनशीलता और धीरज **असीम** होना चाहिये। हमारी योग की स्थिति एक तो उतनी श्रेष्ठ हो कि हम एक-दूसरे के विक्राल दुर्व्यवहार को अपने ही पूर्वकर्मों का हिसाब-किताब मानते हुये उसे वर्षों तक भी सहन करते चले जायें और अपनी योग की अव्यक्त अवस्था द्वारा हर्ष और उल्लास में बने रहें। शिवबाबा ने इसके लिये हमें अनेक अनमोल विधियां अथवा युक्तियां भी बताई हैं। अपकारी पर उपकार की भावना बनाये रखना, निन्दक को भी स्नेह देना, शत्रु को भी गले लगाने की बात बाबा ने कही है। दूसरों की बुराइयों को न देख, उन द्वारा बुरा व्यवहार होने पर भी उन्हें क्षमा करने, उनके अवगुणों को चित्त पर न धरने, अपनी अवस्था को न्यारा और प्यारा बनाये रखने और सबको प्यार से अपना बनाने की बात भी बाबा ने समझाई हुई है। अतः हर-एक योगाभ्यासी अथवा श्रेष्ठ पुरुषार्थी का पहला कर्त्तव्य तो यह है कि वो इन अनमोल शिक्षाओं के अनुरूप जीवन बनाते हुये अपने संघर्षों को समाप्त करने का यत्न करे। यदि इससे भी स्थिति में सुधार नहीं होता तो वो उस व्यक्ति से खुले मन से बात कर ले कि वो उससे क्यों रूष्ट है अथवा उसका क्यों विरोध करता है और उसके प्रति अपनी शुभभावना व्यक्त करे। परन्तु यदि वर्षों तक सज्जनतापूर्वक व्यवहार करने, गम्भीर बने रहने, सहन करते रहने और मन में क्षमाभाव बनाये रखने तथा उपरोक्त रीति से बात कर लेने के बावजूद भी परिस्थिति का हल होते दिखाई नहीं देता और ऐसा लगता है कि अपनी सहनशीलता और धैर्यता अपनी सीमा को पहुंच गये हैं, तो फिर या तो किसी वरिष्ठ, योगयुक्त, दिव्यबुद्धि सम्पन्न, मधुरभाषी, माननीय व्यक्ति के द्वारा परिस्थिति को सुधारने में सहयोग लेना चाहिये और यदि वो सहयोग उपलब्ध न हो अथवा सफल न हो तो फिर दूसरा ही रास्ता निकालना चाहिये।

दूसरा रास्ता क्या है?—ज्ञानवान तथा योगाभ्यासी जनों के सामने वह भी स्पष्ट है।

—जगदीश

दिल्ली शक्तिनगर में आयोजित प्रवचन माला कार्यक्रम में प्रवचन करते हुए भ्राता दिनेश अग्रवाल जी, सहायक निदेशक, समाज कल्याण, दिल्ली।

शब्दों का महत्त्व

कहा गया है कि जबान के घाव तलवार के घाव से भी ज्यादा गहरे होते हैं। यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए तो कितने ही मनुष्य अपने तीखे वचनों से हर आए दिन दूसरों को जख्मी करते रहते हैं। यों सरकार के कानून तो केवल तलवार द्वारा दूसरे को घाव पहुंचाने वाले व्यक्तियों के लिए दण्ड निश्चित करते हैं, वे जबान के द्वारा दूसरों के मन दुखाने वाले व्यक्तियों के दण्ड के बारे में प्रायः मूक हैं। परन्तु यदि वास्तविकता पर ध्यान दिया जाए तो सचमुच मनुष्य के तेज-तर्रार वचन नुकीले और जहरीले तीरों के समान होते हैं जो दूसरों के जिगर के टुकड़े-टुकड़े करके रख देते हैं। तलवार से तो मनुष्य को एक बार मार दिया जाता है परन्तु वचनों से घाव पहुंचाने के कुछ समय बाद जब जख्मी व्यक्ति अभी ठीक ही नहीं हुआ होता वह पुनः उसको घाव पहुंचाना तो प्रायः उस व्यक्ति को कई बार मारने के समान है। ऐसे बड़े अपराध का दण्ड क्या होना चाहिये?

यह ठीक है कि योगी व्यक्ति योग का कवच पहने रहता है जिसके फलस्वरूप किसी व्यक्ति द्वारा दी गई गाली रूपी गोली नहीं लगती या वाणी रूपी बाण उसके हृदय को नहीं छेदते या कटु बोलों की कटार उसके मन को लहू-लुहान नहीं करती परन्तु जो व्यक्ति अपने शब्दों रूपी शरों अथवा शस्त्रों से प्रहार करता है, उसका प्रयास तो आक्रमित व्यक्ति को घाव पहुंचाना ही होता है। जिस प्रकार कत्ल न होने पर भी कत्ल की कोशिश करने वाले व्यक्ति को दण्डित किया जाता है, वैसे ही अपने शब्दों के द्वारा प्रहार करने वाले व्यक्ति को भी अशान्ति अथवा दुख के किसी-न-किसी रूप में दण्ड तो मिलता ही है।

जब हम अपने वचनों पर इस पहलू से विचार करते हैं तो मालूम होता है कि शब्दों से शास्त्र और श्लोक भी बन सकते हैं और शस्त्र तथा शूल भी। शब्दों से गीत भी बन सकते हैं और गाली भी। शब्द मरहम का काम भी कर सकते हैं और मन को मारने के भी निमित्त बन सकते हैं। शब्द शान्ति भी दे सकते हैं और मन को जलाने वाले शोलों का भी काम कर सकते हैं। इस प्रकार शब्दों की कई उपमाओं का वर्णन किया जा सकता है जिनसे यह स्पष्ट हो सकता है कि व्यक्ति, परिवार और समाज में शब्दों की क्या शक्ति और क्या महत्त्व है! संसार में सम्मान और अपमान, स्तुति और निन्दा, प्रशंसा और प्रताड़ना, स्नेह और स्नेह-शून्यता, ज्ञान और मिथ्या-ज्ञान—सभी की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा ही होती है और शब्दों ही के दुरुपयोग अथवा गलत प्रयोग के कारण संसार में संघर्ष और कलह-क्लेष है।

इसलिये यदि कोई मनुष्य अपने जीवन में शान्ति प्राप्त करना चाहता है, दूसरों को शान्ति देने के निमित्त बनना चाहता है अथवा समाज में शान्ति की पुनः स्थापना की सेवा करना चाहता है तो शब्द-संयम उसके लिये अत्यावश्यक है। ज्ञानवान व्यक्ति ही वह है जो शब्दों को विवेक के तराजू में तौल कर बोलता है। योगी कहलाने का अधिकारी ही वह है जिसके वचन युक्ति-युक्त होते हैं। दिव्य गुणों की धारणा में नम्रता, मधुरता, शीतलता, सद्भावना, शुभ-कामना, सहनशीलता, धैर्य इत्यादि जो गुण हैं उनकी पहली अभिव्यक्ति मनुष्य के वचनों ही से होती है। सेवा करने के लिये भी मनुष्य को ऐसे शब्द बोलने होते हैं जिनमें स्नेह, सौहार्द, सेवा-भाव आदि झलकते हों। अपने जीवन को महान् बनाने के पुरूषार्थ में अपने शब्दों पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है उसके बिना मनुष्य ज्ञान, योग-अभ्यास, दिव्य गुणों की धारणा और सेवा— सभी क्षेत्रों में निष्फल हो जाता है।

पानीपत—थर्मल प्लांट में आयोजित राजयोग शिविर में उपस्थित इंजीनियर्स तथा अन्य शिक्षणार्थियों को राजयोग की विस्तृत जानकारी देती हुई ब्र० कु० सुधा बहन।

ईश्वरीय प्यार– योग का आधार

–ब्र० कु० सूर्य, माउण्ट आबू

जिस भगवान् के प्यार की एक बून्द के लिए, हम नयनों से अनेक प्रेम-बिन्दु बहाते थे, उसके प्यार को प्रत्यक्ष पाकर हम क्यों न उसके प्यार में मग्न हो जाएं! ईश्वरीय प्यार, योग को सरलता और स्थायित्व देता है। इस ईश्वर के प्यार में सभी व्यर्थ संकल्पों का प्रवाह शीघ्र ही समा जाता है। ईश्वरीय प्यार में जो मग्न है, उसे राजयोग, अभ्यास करने जैसा नहीं लगता है बल्कि ऐसी आत्मा सहज ही योग-युक्त हो जाती है।

जन्म-जन्म हमने जिसे पुकारा, जिससे अनेक वायदे किये कि बस एक बार तुम आ जाओ, हम तुमसे पल भर भी अलग नहीं होंगे। एक बार तुम आ जाओ...बस फिर हम तुम्हें जाने नहीं देंगे...तुम आओ, हम तुम्हारी ही बात मानेंगे, संसार को ठुकरा देंगे। अब वही भगवान् जिसके दर्शनों के हम प्यासे थे, आकर हमें वे वायदे याद दिलाते हैं और कहते हैं कि अब मेरी बात मानो। यदि तुम्हें मेरी श्रीमत पर नहीं चलना था तो तुमने मुझे बार-बार बुलाया ही क्यों था।तो सूक्ष्म दृष्टि से स्वयं को देख लें हम,कहीं ऐसा तो नहीं कि जिसकी जन्म-जन्म इन्तजार थी, जब वह मिलने आ गया, तो हम किन्हीं और वस्तुओं व व्यक्तियों की इन्तजार में लगे हुए तो नहीं हैं?

कितना प्यार करता है हमारा प्रियतम हम सब सजनियों को,क्या इसका सम्पूर्ण एहसास है हमें? या विभिन्न दैहिक सम्बन्धों में हमने अपने प्यार को बांट दिया है? हमारे दिल का सच्चा प्यार उस एक के ही लिए है या हमने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं? तो आओ,हम अपने ईश्वरीय प्यार में वृद्धि करें।

ईश्वर से प्यार कैसे बढ़े?

भगवान् से प्यार बढ़ाना है परन्तु वह अति सूक्ष्म है, देहधारी नहीं है। कैसे बढ़ायें इस प्यार को–

•जितना-जितना हम अपने प्राणेश्वर परमपिता को जानते जा रहे हैं, उतना-उतना ही हमारा प्यार बढ़ता जा रहा है। यों तो हम सब कहेंगे कि हम उसे पूर्णतया जानते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। किसी का भी परिचय होना अलग बात है और उसे पूर्णतया जानना अलग बात है। उदाहरणार्थ–यदि हम चिन्ताओं में जलते हैं, यदि हम परिस्थितियों में उलझते हैं, यदि हम मैं-पन के बोझ से भारी हैं,तो इससे सिद्ध है कि हमने उसको पूर्णतया नहीं जाना है।

•जितनी-जितनी हमारी पवित्रता सूक्ष्म होती जा रही है, पवित्रता के सागर से हमारा प्यार बढ़ता जा रहा है। क्योंकि पवित्र दिल ही इस विशुद्ध स्नेह का पात्र है।

•यदि हम थोड़ा पीछे मुड़कर देखें कि उसने हमें कितना सहयोग दिया है, उसने हमारे लिए क्या-क्या किया है तो निःसन्देह हमारा मन उसके प्यार में डूब जाएगा। हम उसके एहसानों को भूल नहीं पायेंगे।

•यदि हमें ये भी पता लग जाए कि वह हमें कितना चाहता है, उसका हमसे कितना प्यार है, वह हमें कितनी ऊँची दृष्टि से देखता है, वह हमारी सबके सामने कितनी महिमा करता है, वह हमसे कितनी ऊंची आशाएं रखे हुए है और हमें सर्व महान् बनाने के लिए वह स्वयं भी क्या-क्या कर रहा है, तो भी हमारा मन उसके प्यार में बलिहार हो जाए!

•जितना-जितना हम उनसे समीप के सम्बन्ध जोड़ेंगे, उसे अपना समझेंगे व उसके कार्य को अपना समझेंगे, उससे हमारा स्नेह बढ़ता जायेगा।

•यों तो प्यार स्वतः ही हो जाता है, और हमें जैसे ही यह स्मृति आई कि अरे, यह तो वही है जिसके मात्र हम दर्शन करना चाहते थे, यह तो वही है जिससे हम सब कुछ त्याग करके भी मिलना चाहते थे, यह तो वही है जिस पर हम बलिहार जाना चाहते थे, तो हमारा प्यार भी अथाह हो गया।

इस प्रकार के चिन्तन से हम अपने ईश्वरीय प्यार में वृद्धि करते चलें तो हमें योग में अधिक एकाग्रता का व मग्न स्थिति का अनुभव होता रहेगा।

ईश्वरीय परिवार से प्यार

हमें निरन्तर योग-युक्त होना है। परन्तु सारा दिन हमें जिन आत्माओं के साथ रहना है, उनसे यदि हमारे मधुर सम्बन्ध नहीं होंगे, उनके प्रति यदि हमारी श्रेष्ठ भावनाएं नहीं होंगी, उनके प्रति यदि हमारे मन में विशुद्ध स्नेह नहीं होगा, तो उनसे होने वाला टकराव हमारे मन को विचलित करता रहेगा। यदि हमारा सभी से दिल का स्नेह होगा तो यह स्नेह हमें माया जीत बनाने का बल प्रदान करता रहेगा।

जो राजयोगी अपने लौकिक में रहते हैं, वे भी अपने सम्बन्धों को मधुर करें। उनके प्रति अपनी भावनाओं को अपनी दृष्टि को व अपने व्यवहार को बदलें। और जो लोग ईश्वरीय परिवार में रहते हैं, वे उनकी महानताओं को जानकर सम्बन्धों को व व्यवहार को मधुर बनायें। हमारा यह ईश्वरीय परिवार वास्तव में इतना महान् है जो ऐसा परिवार चारों युगों में कभी भी नहीं होता, जिसके माता-पिता स्वयं भगवान् व प्रजापिता ब्रह्मा हों। तो आओ,हम विचार करें कि हमारा यह अलौकिक परिवार कितना महान् है!

ईश्वरीय परिवार की महानताएं

कहीं भी टकराव का कारण, सच्चे दिल की शुभ- भावनाओं की कमी ही होती है और इसका कारण है—परिवार से दिल का प्यार न होना। प्यार न होने का कारण है आत्माओं की महानताओं को न जानना। विशेषताएँ ज्ञात होने पर प्यार स्वतः ही बढ़ जाता है। तो इस महान व विशाल परिवार की विशेषताएं इस प्रकार हैं—

•ये सभी आत्माएं सम्पूर्ण विश्व में, चारों युगों में सबसे महान् हैं। तीन बहुत बड़ी प्राप्तियाँ इन्हें हुई हैं। एक—इन्हें स्वयं भगवान् मिल गये। इतना ही नहीं भगवान् इनका ही हो गया। इन्हें भगवान् ने अपना बनाकर अपनी छत्रछाया में ले लिया। दूसरी—इनके पास सम्पूर्ण ज्ञान है। आप यदि सारे संसार में घूमें तो कोई भी ऐसा विद्वान या सन्यासी नहीं होगा जिसके पास सम्पूर्ण ज्ञान हो। और इन्हें देखो, स्वयं भगवान् ने आकर पढ़ाया। तीसरी—इन्होंने पवित्र जीवन अपनाया। यह साधारण बात नहीं। आज जबकि सम्पूर्ण विश्व पर कलियुग का भूत बुरी तरह सवार है, इन्होंने स्वयं को कलियुग के प्रभाव से मुक्त किया और इनका दिनोंदिन अपने विचारों को शुद्ध करने का भी ध्येय है।

कल्पना करो, इन 3 महानताओं से सम्पन्न कोई संन्यासी यदि कहीं जाए तो लोग उसके चरणों को छूकर ही अपने को धन्य मानें। हमारा तो यह ईश्वरीय परिवार है। परन्तु हम इन अद्वितीय महानताओं को नज़र-अन्दाज कर, इन महान् विभूतियों की छोटी-छोटी कमियों को चित्त पर धारण कर घृणा-भाव को जन्म दे देते हैं। निसन्देह,यह हमारी गलती है।

•ये परिवार, सर्वश्रेष्ठ भाग्यशाली आत्माओं का परिवार है। यदि किसी परिवार में एक भी व्यक्ति भाग्यशाली होता है, तो उसके कारण सारा परिवार सुखी रहता है। ये कितना महान् परिवार जिसका प्रत्येक व्यक्ति पद्मापद्म भाग्यशाली है, जिनका भाग्य स्वयं भगवान् ने आकर बनाया है, जिनके भाग्य को देख स्वयं भाग्यविधाता भी प्रसन्न होकर गुणगान करता है, जिनके हाथ में भाग्यविधाता ने भाग्य की रेखा खींचने की कलम ही दे दी है! तो यदि ऐसी भाग्यशाली आत्माओं से ही हमारा स्नेह नहीं होगा तो और भला किनसे होगा?

परन्तु हम गलती क्या करते हैं? आत्माओं की वर्तमान स्थिति को ही देखते हैं, उनके सम्पूर्ण स्वरूप को नहीं।

•ये उन आत्माओं का परिवार है, जिन्हें भगवान् ने स्वयं चुना है। यदि हम उनकी महानताओं को नहीं जानते तो मानो हम भगवान् के चुनाव में संशय करते हैं। ये वे सभी आत्माएं हैं जिन पर भगवान् की नजर पड़ी है, जिन्हें वह स्वयं दिल से प्यार करता है, जिनके सिर पर उनके आशीर्वाद का हाथ है, तो ऐसी महान् आत्माओं से हम घृणा क्यों करें?

•ये वे ही सब हैं, जिन्हें हम मन्दिरों में देवी-देवताओं के रूप में पूजते थे और कामना करते थे कि हे देव, हे देवी, आप हमें कब दर्शन देंगी! तो देखो विश्व ड्रामा का कैसा सुहाना दृश्य है कि वही सब देवी-देवता एक ही परिवार के सदस्य हैं! तो जिनके दर्शनों को हम आतुर थे, उनके साथ रहकर उनसे ईर्ष्या व अलगाव क्यों? "ये वही तो हैं"—यह स्मृति हमारे मन में स्नेह पैदा करती है।

परन्तु कहीं-कहीं हम एक दूसरे से आवश्यकता से ज्यादा कामना रखते हैं जिन्हें पूर्ण करना सहज नहीं होता और परिणामतः हम उनसे असन्तुष्ट होकर अपनी भावनाओं को बदल देते हैं। यही भिन्न-भिन्न भावनाएं हमें विचलित करती रहती हैं व पारिवारिक प्यार से वंचित रखती हैं।

•ये उन ही आत्माओं का मिलन है, जो जन्म-जन्म साथ रहे थे, अन्त में सभी एक स्टेज पर आ गये है। तो हमारा आपस में कितना प्यार हो!

•हमें याद रहे—इनसे अच्छी आत्माएं सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी नहीं मिल सकतीं। जरा इनकी कुर्बानी को तो देखो। प्रत्येक ने कितना बड़ा-बड़ा त्याग किया है! एक-एक की सहन करने की कहानी को तो सुनो। एक-एक की बलिदानी भावनाओं पर नजर दौड़ाओ। इन्होंने संसार की राहें छोड़ दीं, संसार के सुखों को लात मार कर त्याग व तपस्या से भरा जीवन अपना लिया। एक-एक आत्मा ईश्वरीय प्यार में अपना सर्वस्व स्वाहा करने को तैयार है।ऐसी श्रेष्ठ आत्माओं से भला किसका स्नेह नहीं होगा। एक दिन आयेगा, जब समस्त विश्व इनके आगे शीश झुकायेगा।

•ये ईश्वरीय परिवार की आत्माएं जिन्हें चुन-चुन कर स्वय ईश्वर ने ये खुशबूदार गुलदस्ता बनाया है, विश्व में शोभायमान हो रहा है। इसकी सुगन्ध से ही विश्व सृष्टा, सृष्टि को सुगन्धित करना चाहते हैं। यदि इस गुलदस्ते का कोई पुष्प सुगन्धि नहीं बिखेरता तो उसकी सुन्दरता या मात्र उसकी उपस्थिति भी तो इस गुलदस्ते की शोभा है! गुलदस्ते में पत्तियों की भी तो आवश्यकता होती है।

•कई बार जब हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति यज्ञ की सेवा नहीं करता, वह तो मात्र बोझ है, बेकार है—यह सोचकर हम उसे संगठन से रिजैक्ट (अलग) कर देते हैं। परन्तु उसकी पवित्रता का योग-दान भी इस ईश्वरीय कार्य में कम महत्व का नहीं।

हम जानते हैं, स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गांधी के आह्वान पर जिन व्यक्तियों ने संग्राम में कूदकर गांधी जी को सहयोग दिया, उनका कितना महत्त्व हुआ! अब तक भी उन स्वतन्त्रता सेनानियों को अनेक सुविधायें प्राप्त हैं। तो हम सोचें, जिन्होंने भगवान् के आह्वान पर अपना सब कुछ छोड़कर उन्हें सहयोग दिया, उनका कितना महत्व है! भगवान् का भी उन पर कितना प्यार होगा!

हम केवल यह न देखें कि ये तो कुछ भी सेवा नहीं करते। हम उनका समय पर ईश्वरीय कार्य में दिया गया योग-दान देखें। हम दूसरों द्वारा गलती होने पर या हमें सहयोग न दिये जाने पर या अन्य किसी कारण से, आपसी सम्बन्धों को न बिगाड़ें। गलती होने पर भी हम धैर्यता से काम लें। काम तो बिगड़ते-सुधरते ही रहेंगे परन्तु हम अपने स्नेह के सम्बन्ध न बिगाड़ें।

तो इस प्रकार, जैसे हमारा सच्चा प्यार अपने परमपिता से है, वैसा ही सच्चा प्यार उसके परिवार से भी हो। परिवार से प्यार न होना ईश्वर से स्नेह की कमी दर्शाता है। तो हम सभी महान् आत्माओं में महानता का भाव रखते हुए, सभी ईश-प्रेमी आत्माओं में प्रेम का भाव रखते हुए ईश्वरीय परिवार में स्नेह का वातावरण पैदा करें—यह भी हमारी एक महान् सेवा होगी। ताकि इस परिवार की कोई भी आत्मा स्नेह की प्यासी न रह जाए, वह यह शिकायत न करें कि प्यार के सागर परमात्मा के परिवार में भी प्यार का अभाव है। इससे हमारा संगठन वृद्धि को भी प्राप्त होगा व शक्तिशाली भी बनेगा और परिवार का ये संगठन हमें योग-अभ्यास में सहयोगी अनुभव होगा, न कि विघ्न।

समस्तीपुर—में आयोजित 'आध्यात्मिक प्रदर्शनी' का उद्घाटन पद्मश्री महाकवि रामअवतार पोद्दार जी दीप प्रज्ज्वलित करते हुए कर रहे हैं।

दिल्ली—हरी नगर सेवाकेन्द्र पर आयोजित एक स्नेह मिलन कार्यक्रम में उपस्थित डॉक्टर्स को सम्बोधन करते हुए ब्र० कु० डा० गिरीश पटेल जी।

बिराटनगर (नेपाल)—'नारी विकास संघ' के नये भवन के उद्घाटन समारोह में ब्र० कु० गीता बहन प्रवचन कर रही हैं।

ब्रह्मपुर—स्थानीय प्रेस क्लब में आयोजित 'प्रेस मिलन' कार्यक्रम में उपस्थित विभिन्न समाचार-पत्रों के संवाददातागण ब्रह्माकुमारी बहनों के साथ दिखाई दे रहे हैं।

धन कमाओ परन्तु कैसे?

संसार में सुख-सुविधा के लिए धन आवश्यक है। अतः धन कमाओ। परन्तु ऐसे तरीके से या ऐसा धन न कमाओ कि जिससे मन को चिन्ता ही लगी रहे। ऐसे धन से क्या सुख जिससे हृदय रोग हो जाए या रक्तचाप बढ़ा रहे? याद रखो कि धन जीवन के लिये है, जीवन धन के लिये नहीं है। जिस धन से नींद आना भी कठिन हो जाए, उस धन को कमाने से क्या सुख? अतः जीवन में संयम-नियम और विधि-विधान तथा आचार-व्यवहार की उत्तम मर्यादा को सामने रख कर धन कमाओ।

ऐसे तरीके से भी धन न कमाओ कि भय लगा रहे। भय का जीना भी कोई जीना है? भय सरकार से हो, चोर से हो या यम का हो, है तो वह भय ही! भय तो तन और मन दोनों के लिए हानिकर है। यह तो आत्म-पीड़ा का कारण है। धन तो खुशी का देने वाला होना चाहिये, सुख का साधन होना चाहिये, आराम को देने वाला होना चाहिये परन्तु भय तो कांटों की शैय्या की तरह, नहीं-नहीं प्राण पर पहाड़ की तरह है। अतः धन कमाओ परन्तु ऐसे तरीके से कि भय उसके साथ में न आये। यदि धन आए और साथ में भय लाए तो समझ लो कि कहीं कुछ गलती है, कहीं कोई नियम-भंग हो रहा है। अतः उसे ठीक ही कर डालो।यदि उसके बाद भी भय है तो प्रभु की शरण में आओ। इस से भय भाग जाएगा।

व्यापार और उद्योग से अर्थ-लाभ तो होना ही चाहिये। कोई भी व्यवसाय कमाई के लिये ही तो किया जाता है। अतः लाभ पर आपका अधिकार है। व्यापार और उद्योग में तन तथा मन लगाने के अतिरिक्त पैसा भी लगाया जाता है, जोखिम भी लिया जाता है, पहल भी की जाती है और व्यवस्था तथा सूझ को भी उसमें जुटाया जाता है। अतः इसमें लाभ की चेष्टा स्वाभाविक है। परन्तु याद रखो कि धन या लाभ तीन तरह का होता है। यदि ऐसा धन्धा हो कि दूसरों का भी भला हो, उन्हें भी घाटा न हो और आपको भी लाभ हो तो यह धन दूध के समान है। जैसे पैसे को दूध से धो कर लक्ष्मी की पूजा में रखते हो, यह वैसा ही पवित्र धन है क्योंकि आपके मन में दूसरों के प्रति भी शुभ भावना और शुभ कामना है।

यदि व्यापार एवं उद्योग की रीति-नीति ऐसी है कि अधिक तो वह विधिवत और ठीक है परन्तु उसमें थोड़ा लेन-देन न चाहते हुए भी व्यवहार की उत्तमता से नीचे के स्तर का है, तो वह धन पानी-मिश्रित दूध की तरह है। उससे सुख भी उतने ही अनुपात में प्राप्त होगा।

यदि किसी का धन्धा या उसे करने का तरीका ऐसा है कि दूसरा व्यक्ति यह महसूस करता है कि यह सौदा ठीक नहीं हुआ और कि वह मजबूरी से या दुखी होकर वह सौदा कर आया है, तो वह कमाई तामसिक है। यदि सौदा करने वाला बाद में पछताता है, उसके मन में लेश-मात्र भी दुःख पैदा होता है तो वह धन सुखोत्पादक नहीं है। अतः यदि दुःख से बचना चाहते हो और सुखोत्पादक धन का उपार्जन करना चाहते हो तो प्रथमोक्त सिद्धान्त को सामने रखो।

मनुष्य को बहुत लाभ होता है तो खुशी की बात है। परन्तु अधिक लाभ अथवा अधिक धन के साथ अभिमान तो नहीं आ जाना चाहिये। व्यापार या उद्योग धन लाभ के लिये किया जाता है, अभिमान की उत्पत्ति के लिये नहीं। अभिमानी मनुष्य तो दूसरों से मान की भीख मांगता है। अभिमानी व्यक्ति स्वयं अपनी शान समझता है परन्तु अन्य लोगों के मन में तो उसका मान नहीं होता। अतः धन कमाओ परन्तु साथ में अभिमान मत आने दो। धन एक शक्ति है। शक्ति गर्व के लिए नहीं, उत्पादन के लिए अथवा सेवा के लिए होती है। अतः धन को सुख और सेवा में लगाओ। याद रखो, संसार में एक से एक बढ़कर धनवान व्यक्ति हैं और धन सदा किसी के पास एक-सा रहता भी नहीं। अतः धन का गर्व मिथ्या गर्व है।

व्यापार और उद्योग कभी मन्दा भी हो सकता है, उसमें कभी हानि की भी परिस्थिति आ सकती है। इस संसार में परिवर्तन चक्र से कई अवाञ्छित परिवर्तन भी होते रहते हैं। हानि में हिम्मत हारना गोया हानि को भारी बना देना है। दिन-भर में सूर्य की भी तीन अवस्थाएं होती हैं, अतः समझना चाहिये कि यह परिस्थिति भी पार हो ही जाएगी। अपनी चिन्ता प्रभु को दे दो और चिन्ता की

बजाय ईश्वर-चिन्तन करो। प्रभु-चिन्तन की विधि सीख लो तो चढ़ती कला के दिन आ जायेंगे।

यदि कोई मनुष्य व्यापारी या उद्योगपति है, तो भी वह एक प्रकार से कृषक ही है क्योंकि इस संसार रूपी कर्म क्षेत्र में कर्म रूपी बीज तो वह भी बोता ही है। खेत में डाले गये बीज तो अनुकूल जल-वायु या धरनी न होने पर अंकुरित नहीं भी होते परन्तु कर्म रूपी बीज तो अवश्य ही कांटे या फूल, क्यारी या फलदार वृक्ष के रूप में सामने आते ही हैं। प्रायः सभी मनुष्य जानते और मानते हैं कि कर्म अपना फल मनुष्य के सामने लाता है। तब भला मनुष्य इस रहस्य को भूल क्यों जाते हैं? व्यापार या उद्योग के कार्य में लगे होने पर उनके मन से यह बात खिसक क्यों जाती है या उनके मन में होने पर भी वे इसकी अवहेलना क्यों करते हैं? "जैसा बोयेंगे वैसा काटेंगे" के सिद्धान्त को समझते हुए भी मनुष्य कई बार कांटे बोने रूपी कर्म क्यों करता है?

सोचने पर यह रहस्य सामने आयेगा कि या तो मनुष्य पुत्र-पौत्र या स्त्री-बेटी के मोह-पाश में फँस जाता है या लोभ ही उसके विवेक पर पट्टी बान्ध देता है और या उसकी आत्मिक दुर्बलता उसे परिस्थिति अथवा प्रलोभन के वशीभूत कर देती है। अतः आत्मा को बलवान बनाने की सहज विधि को जानना ज़रूरी है। आज भी धनवान लोग आत्मा की दृष्टि से महान लोगों को आमंत्रित करके उनका आशीर्वाद मांगते हैं अथवा उन्हें अपनी गद्दी पर आसीन होने के लिये प्रार्थना करते हैं, तब वे स्वयं ही यदि महानता का कुछ अंश धारण कर लें तो स्वयं ही सिद्धि स्वरूप हो जायेंगे और उनके अपने हाथ में बरकत और वृद्धि आ जायेगी।

धन कमाओं पर दूसरों से ईर्ष्या कर के मत कमाओ। हरेक आत्मा के कर्म और प्रालब्ध अलग-अलग हैं; तब दूसरों से अपनी तुलना क्यों की जाए? किसी को देख कर स्वयं भी वैसा ही बनने की कोशिश करना गोया उसका फालोवर या अनुचर बनना है। किसी को अधिक धनवान बनते देखकर उस-जैसा धनवान बनने का यत्न करना तो गोया स्वयं को उससे घटिया मानना है। यह तो आत्म-सम्मान को गँवाने वाली बात है। स्व-मान में रहते हुए ही धन कमाना ठीक है। ईर्ष्या से तो सुख में दुःख मिश्रित हो जाता है।

कई लोग धन को "लक्ष्मी" और पैसे को "नकद नारायण" कहते हैं। वे दीपावली के अवसर पर श्रीलक्ष्मी और श्री नारायण का पूजन भी करते हैं। परन्तु श्री लक्ष्मी और श्री नारायण को तो उनके चित्रों में कमल पुष्प पर दिखाया जाता है। श्री लक्ष्मी का एक नाम "कमला" और श्री नारायण का एक नाम "कमलापति" भी है। अतः श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का आधार तो कमल ही है। कमल पुष्प के समान पवित्र बनने के कारण ही तो उन्हों ने यह महान देवी और देव पद पाया, वे पूज्य बने और अतुल धन तथा ऐश्वर्य के मालिक बने। अतः धन कमाने के

व्यापार करते समय जीवन कमल पुष्प समान

लिये व्यापार या उद्योग करते हुए यदि आप अपना जीवन ही कमल-सम बना दें तो आप स्वयं ही उनके समान बन जायेंगे। "धन" या "नकद नारायण" ही को इष्ट मान कर जीवन-भर उन्हीं की साधना में लगे रहने की बजाए धन कमाते हुए यदि लक्ष्मी और नारायण रूप जीवनोद्देश्य को सामने रखा जाय, तभी जीवन की वास्तविक सफलता है। लक्ष्मी वह है जो लक्ष्य में (स्थित) हो।अतः यह जो उक्ति है कि "नर तू ऐसा कर्म कर कि जिससे नारायण बने और नारी तू ऐसा कर्म कर जिससे तू लक्ष्मी बने", इसके अनुसार जीवन को ढालते हुए व्यापार या उद्योग करने से सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

मनुष्य को यह याद रखना चाहिये कि धन एक साधन है, यह सिद्धि नहीं है। अतः इसे साधन मान कर कमाना और जीवन की सिद्धि के लिये प्रयोग करना चाहिये। मनुष्य यदि अपना सारा जीवन साधन ही इकट्ठा करने में लगा देगा तो उसे सिद्धि के लिये प्रयोग कर सिद्धि स्वरूप कब बनेगा? अतः एक तो धन ऐसे तरीके से कमाया गया हो जो सिद्धि से वंचित न कर दे और, दूसरे, सारा जीवन ही उसके उपार्जन में न लगा दिया जाये। मनुष्य को चाहिये कि वह अपने दिन-भर के समय को ठीक तरह बांट ले। वह कुछ समय व्यापार या उद्योग में, कुछ अपने

धन कमाओ परन्तु सुख और सेवा में लगाओ

स्वास्थ्य-लाभ में और कुछ घर के सदस्यों या मित्रजनों के साथ रहने में लगाये और कुछ अपने जीवन की परमसिद्धि में भी नित्य निश्चित रूप से लगाये। परमात्मा भी तो हमारे मात-पिता, शिक्षक, सद्गुरु तथा सर्वस्व हैं और विधि तथा सिद्धि के दाता भी हैं। अतः उनके संग जीवन न जीना अर्थात् उनके साथ मन को न मिलाना भी एक बहुत बड़ी भूल है।

व्यापार और उद्योग में भी लेन-देन रूप कर्म होता है, उसे आय या व्यय, ऋण या सम्पत्ति के खाते में चढ़ा दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार, जीवन के हर कर्म से कर्मों का खाता बनता है। वह खाता ऋणात्मक भी हो सकता है, गुणात्मक अथवा लाभात्मक भी। अतः हरेक व्यक्ति को देखना चाहिये कि जो कर्म मैं कर रहा हूँ, उससे मेरे कैसे कर्मों का लेखा-जोखा अथवा हिसाब-किताब बन रहा है? वर्ना ऐसा न हो कि कर्मों के व्यापार में मनुष्य को हानि हो रही हो अथवा उसे देखने में तो अभी लाभ ही हो रहा हो परन्तु वस्तुतः उसे ऐसी हानि हो रही हो जो उसे निकट अथवा दूर भविष्य में चुकानी पड़ेगी।

प्राचीन रीति-रिवाज के अनुसार व्यापारी लोग अपनी गद्दी के निकट अथवा अपने बही-खातों के प्रारम्भ में स्वस्तिक अंकित करते हैं। दीपावली, जो कि व्यापार एवं वाणिज्य वालों का विशेष त्योहार है, के अवसर पर भी वे स्वस्तिक अंकित करते हैं क्योंकि यह व्यापार के वर्ष के प्रारम्भ का प्रतीक और शुभ अवसर माना गया है जबकि पुराने खाते बन्द कर के नये खाते खोले जाते हैं। व्यापारी लोग अपने व्यापार के स्थान पर प्रवेश करते ही अगर बत्ती या धूप भी जगाते हैं। परन्तु बहुत-से लोग इन कार्यकलापों को शुभ मानते हुए भी इनके वास्तविक अर्थ से परिचित नहीं हैं।

वास्तव में स्वस्तिक में दो मध्यवर्ती रेखाएं एक वृत्त की दो व्यास-रेखाओं की ही प्रतीक हैं जो कि केन्द्र-बिन्दु से गुज़र रही हों और स्वस्तिक की चार भुजाएं, जो कि ऊपर दाहिनी ओर से शुरू होती हैं, दिशा अथवा स्थिति की प्रतीक हैं। दोनों व्यास-रेखाएं सृष्टि-चक्र अथवा काल-चक्र को चार बराबर भागों में बांटती हैं जिन्हें कि हम सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग के नाम से जानते हैं। ऊपर की दायीं ओर की भुजा-रेखा सतयुग की प्रतीक है और यह इंगित करती है कि सतयुग में सब शुभ और लाभ ही है। दायीं दिशा भारतीय संस्कृति में दाहिने हाथ की तरह शुभ अथवा पवित्र ही मानी गयी है। आगे भुजा का नीचे की ओर झुका

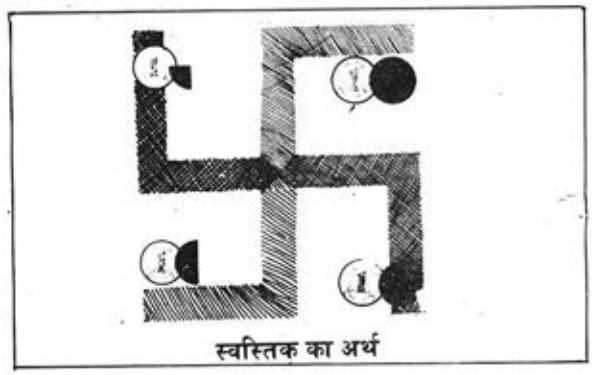

स्वस्तिक का अर्थ

होना धीरे-धीरे पवित्रता की कलाओं में ह्रास का द्योतक है। यह त्रेतायुग का बोधक है। त्रेता में पवित्रता की कलाएं कम होती हैं। आगे चल कर भुजा विपरीत दिशा में, अर्थात् बायीं ओर है। यह वाम मार्ग की संकेतक है। द्वापर युग में मनुष्य का व्यवहार विकृत हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तभी शुरू होते हैं। सतयुग और त्रेतायुग पवित्रता के युग थे जिनमें व्यापार अथवा लेनदेन में स्नेह था और सभी एक-दूसरे को देने में ही अधिक खुशी अनुभव करते थे और वहाँ स्वार्थपूरक लाभ वृत्ति नहीं थी। परन्तु द्वापर युग में मनुष्य में "मेरे", "तेरे" का भाव जागृत हुआ, मोह तथा लोभवृति भी बहुत हल्की मात्रा में जागृत हुई और मनुष्य धन को इक्ट्ठा करने की प्रवृत्ति से युक्त हुआ। धीरे-धीरे ये अशुद्ध प्रवृत्तियां बलवती होती गयीं और आगे कलियुग आया। इसी को स्वस्तिक की वाम दिशा में उर्ध्वगामिनी भुजा के रूप में प्रदर्शित किया गया है। कलियुग के अन्त में तो व्यापार तथा व्यवहार में लोभ, स्वार्थ, शोषण आदि ही प्रधान होते हैं और मिलावट, बनावट, धोखा, लूट-खसूट आदि की अति ही हो जाती है। हर धन्धे में झूठ ही पनपता है। प्रायः मनुष्य झूठ, रिश्वत, कर-चोरी, मिलावट, दुःख देकर कमाने आदि को भी बुरा नहीं मानते बल्कि वह समझता है कि इनके बिना तो धन्धा भी लाभदायक नहीं होता। सरकार जनता पर हर आये वर्ष अधिकाधिक कर लगा कर लोगों को कर से बचने के तरीके सोचने पर मजबूर करती है। हर व्यक्ति के पास जो धन होता है, वह उसके कारण कर-विभाग से तथा हिंसक-तत्वों से भयभीत रहता है। ऐसा ही घोर कलियुग अब चल रहा है।

परन्तु हमें याद रखना चाहिये कि कलियुग के बाद फिर सतयुग आता है। सतयुग में तो हरेक के पास अथाह धन

ऐसी रीति से धन कमाओ कि भय और चिन्ता साथ न आये

और सम्पत्ति होती है। वहाँ चोरी-चकारी, निर्धनता, या हानि का नाम-निशान भी नहीं होता। जैसे रात्रि के बाद दिन आता है वैसे ही अब अज्ञान्धकार और पापाचार का अन्त होकर सतयुग तथा प्रकाश का समय आना शुरू हो रहा है। शीघ्र ही प्रभात होने वाली है। अब जागने का समय है क्योंकि अब ज्ञान-सूर्य परमात्मा ज्ञान-प्रकाश दे रहे हैं। अब सृष्टि का अमृतवेला है जब वे ज्ञान रूपी अमृत बांट रहे हैं। अब उठकर प्रभु की स्मृति में बैठने का समय है क्योंकि यह कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ का शुभ-संगम है जो कि सृष्टि का ब्रह्म मुहूर्त है। अब ज्ञान स्नान करके मन को प्रभु में समाहित करने का शुभ समय अथवा शुभ मुहूर्त है। अब परमपिता परमात्मा इस

ज्ञान धन आत्मा के सुख का साधन

ज्ञान तथा सहज योग के रूप में भाग्य बांट रहे हैं। अब रात्रि की कालिमा से निकल मन को ज्ञान-स्नान से पवित्र करने का समय है। स्वस्तिक इसी बात की परिचायिका है। जिस स्वस्तिक को हम हर वर्ष अंकित करते रहे अब उसके रहस्य को समझकर, अब कालचक्र अथवा परिवर्तन-चक्र को जानकर हमें भी अपने संस्कार बदलने चाहियें और अपने कर्मों का नया खाता खोलना चाहिये। याद रहे कि अब कलियुग जा रहा है और सतयुग आ रहा है। अब जागने और जगाने का समय है।

चौबीस घंटे के जिस काल-चक्र को "दिन" कहते हैं, इसमें भी हमें अपने समय को सुनियोजित करना चाहिये ताकि कहीं ऐसा न हो कि सारी आयु धनोपार्जन में ही गुज़र जाय और धन बैंकों तथा तिजोरियों में पड़ा रहे और आत्मा अपनी यात्रा में यहाँ से डेरा कूच कर चले। सारा ही दिन दुकान या दफ्तर की, कारख़ाने अथवा फैक्टरी ही की तो बात सोचते-सोचते समाप्त नहीं होना है। रात्रि को भी ग्राहक, कर्मचारी या कल-कारख़ाने ही के दृश्य देखते रहने में जीवन की सफलता नहीं है। जीवन तो इनसे बड़ी चीज़ है। उसका तो कोई महान् लक्ष्य है। अतः उस लक्ष्य की

समय को पहचानो – अब नहीं तो कब नहीं

सिद्धि के लिये कम-से-कम प्रातः ब्रह्म-मूहूर्त में या अमृत वेले तो आत्म-चिन्तन तथा ईश्वरीय स्मृति में मन को समाहित करना चाहिये। रात्रि को भी सोने से पूर्व कुछ अपने दिन-भर की तस्वीर देखकर आगे के लिये सम्पूर्णता की ओर बढ़ने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये तथा अपने परमप्रिय परमपिता के प्यार का रसास्वादन करना चाहिये।

याद रहे कि भक्ति और सहज राजयोग में अन्तर है। सहज राजयोग द्वारा ही देह से न्यारे होकर परमपिता परमात्मा में मन को स्थित कर सकते हैं और इसमें कोई शारीरिक कठिनाई भी नहीं है। इससे आत्मा आनन्द-विभोर हो जाती है और उसके संस्कार परिवर्तित होना शुरू हो जाते हैं तथा आदतें बदलनी प्रारम्भ हो जाती हैं।

दान करना एक शुभ कर्म माना जाता है। परन्तु सब प्रकार के दान-कर्मों में से ईश्वरीय ज्ञान का दान, योग-दान तथा दिव्य गुणों का दान श्रेष्ठ हैं क्योंकि जिसे ईश्वरीय ज्ञान, योग विद्या तथा दिव्य गुणों की सुमति दी जाती है वह सदा के लिये निर्धनता, रोग, शोक आदि से मुक्त हो जाता है। यह सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक ज्ञान ऐसा है

धन दान करो – ज्ञान दान करने वाले घर बनाने में

धन कमाने में बुराई नहीं परन्तु पाप की कमाई बुरी है

जिससे आत्मा छह विकारों रूपी रोगों से मुक्त हो जाती है, निर्बलता और बुराइयों की जंजीरों से आज़ाद हो जाती है और परमपिता परमात्मा से अपना सम्बन्ध जोड़कर योग शक्ति से अपने रहे हुए विकर्मों के खाते को चुकता कर देती है। अतः जहाँ ईश्वरीय ज्ञान, सहज राजयोग तथा दिव्य गुणों की शिक्षा दी जाती है, वह आध्यात्मिक अस्पताल भी है, अविनाशी विद्या का विद्यालय भी है, वह ज्ञानधन द्वारा सदा के लिये निर्धनता से मुक्त कराने का सहायता घर भी है। ऐसे ही स्थान बनाना सर्वश्रेष्ठ दान करना है।

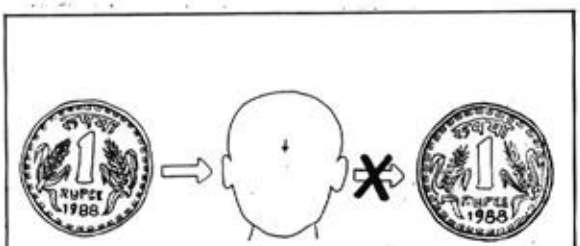

पैसा जीवन के लिये, जीवन पैसे के लिये नहीं

सोना, चांदी, नोट, चैक आदि तो एक प्रकार का धन है जिससे तन के सुख के साधन जुटाये जा सकते हैं परन्तु आत्मा के सुख का साधन ज्ञान धन है। आत्मा योग रूपी पुरूषार्थ से कर्मों का ऋण चुका कर मालामाल होती है; अतः योग अविनाशी कमाई है। दिव्य गुण हीरों से भी अधिक अनमोल रत्न हैं जिनसे मनुष्य-जीवन कौड़ी-तुल्य से हीरे-तुल्य बनता है। संसार में उन्हीं की मूर्तियां बनी हुई हैं जिनमें दिव्य गुण थे। उन्हीं को महान् माना जाता है जिनमें महान् गुण होते हैं। महान् अथवा दिव्य व्यक्तियों के स्मारकों पर ही लोग धन न्योछावर कर देते हैं। दिव्य गुणों के बिना तथा ज्ञान धन के बिना मनुष्य कंगाल हैं। वह सबसे अधिक गरीब है जो विकर्म करके अपने ऊपर कर्मों का बोझ चढ़ाता जाता है। वास्तविक धनी वह है जो ज्ञान, योग तथा दिव्य गुणों से मालामाल और निहाल होकर सदा खुशी के ख़ज़ाने से खुशहाल रहता है। केवल उसे ही जीवन में सन्तोष होता है। सन्तुष्टता मनुष्य की खुशी का साधन है। असन्तुष्ट मनुष्य करोड़ों रूपये होने पर भी कंगाल है।

याद रखो, "धन" माया नहीं है। धन का लोभ, धन में आसक्ति, धन को कमाने के लिये हेराफेरी और छल-कपट माया है। काम, क्रोध, अहंकार तथा आलस्य भी माया के रूप हैं। देह-अभिमान से ही मनुष्य में मनोविकार पैदा होते हैं और स्वयं को "आत्मा" निश्चय कर, सभी को परमात्मा की सन्तान मान कर प्रन्यासी (ट्रस्टी) होकर कार्य करने से मनुष्य मायाजीत बन जाता है। सन्यासी नहीं बनना, प्रन्यासी बनना है। धन कमाना है परन्तु माया को छोड़ना है।

भगवान के महावाक्य हैं-हे वत्स, सभी दुःखों का तथा अशान्ति का मूल कारण छह विकार हैं। विकारों का कारण देह-अभिमान है । देह-अभिमान अज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान के कारण है। अज्ञान तथा मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग द्वारा होती है। ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग स्वयं ईश्वर अथवा परमपिता परमात्मा ही कलियुग के अन्त में, सतयुग प्रारम्भ करने के लिए सिखाते हैं। वर्तमान समय कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ का शुभ संगमयुग है। अतः अब ही ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग की निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करके भविष्य में २१ जन्मों अथवा २५०० वर्षों के लिए सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति अथवा मुक्ति और जीवनमुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।'

भगवान् के महावाक्य हैं कि – **"मीठे बच्चे, सम्पूर्ण तथा स्थाई पवित्रता, सुख और शान्ति अथवा मुक्ति और जीवन मुक्ति आपका ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार है। परन्तु अब नहीं तो कभी नहीं।"**

मुज़फरपुर में 'विश्व सहयोग आध्यात्मिक बैंक' का उद्घाटन भ्राता अभीक घोष, कमीशनर, स्टेट बैंक के उप महाप्रबन्धक भ्राता एस० एल० शर्मा, ब्र० कु० दादा विश्वरत्न तथा अन्य मोमबत्तियां जलाते हुए कर रहे हैं।

आओ बांधे सतरंगी राखी !

लेखिका:– ब्र० कु० गोदावरी, बम्बई (मुलुंद)

भारतवर्ष में भाई और बहन के अमर प्रेम की यादगार में रक्षाबंधन का त्यौहार बहुत ही धूमधाम से मनाया जाता है । रक्षाबंधन अर्थात् जिस त्यौहार में रक्षा करने का भाव भरा हुआ है । हर इंसान जीवन में अपने तन-मन-धन की रक्षा करना चाहता है । भले कोई बुजुर्ग हो, बीमार हो, घर-संसार से परेशान हो, सगे सम्बन्धी, व्यवहार और व्यापार से थके हुए हों और रोज यह कहते भी हों कि इससे तो मर जाएं तो अच्छा, परन्तु जब शरीर छोड़ने की घड़ी आती है तब वह सोचता है—इस जीवन की रक्षा कैसे हो ? जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी इंसान सोचता है कि और दो-चार साल निकल जाएं, यह शरीर न छूटे तो अच्छा ।

इसी प्रकार भले वह तन के रोग से पीड़ित हो, किसी को उसके तन की आवश्यकता भी न हो, दुख में तड़फता हो, फिर भी वह भगवान् से लम्बी आयु की अपेक्षा करता है । मन की रक्षा के लिए भी वह प्रभु से प्रार्थना करता है कि 'हे प्रभु ! मेरे मन को आप संभालना, उसे स्वस्थ रखना, अच्छे मार्ग पर लगाना' । धन की रक्षा के लिए भी वह रात-दिन भागदौड़ करता है ।

परन्तु वर्तमान समय आज का मानव अपनी सम्पूर्ण रक्षा करने में असमर्थ बनता जा रहा है । क्योंकि सिर्फ स्थूल धागों की राखी बांधने से जीवन की रक्षा नहीं होती परन्तु रक्षाबंधन के सच्चे रहस्य को जानने से ही मनुष्यात्मा खुद की रक्षा कर सकती है । परमपिता परमात्मा भी कहते हैं—'हे आत्माएं ! अपने जीवन की सच्ची रक्षा के लिए जीवन को सात प्रकार के रंगों में रंग लो अर्थात् अपने बुद्धि रूपी हाथ पर सात रंगों से रंगी हुई अलौकिक राखी बांधो तो यह राखी जन्म-जन्मान्तर के लिए आपकी रक्षा करेगी । आपके अनेक जन्मों के पाप भस्म हो जायेंगे और आप सदा सुखमय जीवन का अनुभव करेंगे । इस राखी का रंग आपको विकारों के संग से मुक्त करेगा अर्थात् आपकी रक्षा निश्चित होती रहेगी ।' इस अनूठी सप्तरंगी राखी के सात रंग इस प्रकार हैं:–

(१) आत्मीय स्नेह रूपी रंग

हम जानते हैं कि जिस्मानी प्यार तो स्वार्थमय है, दु:खमय है, अल्पकाल का है, जबकि आत्मिय स्नेह का रंग दिव्य, अलौकिक है, झूठे संसार की झूठी माया से दूर कर एक परमात्मा से सच्ची प्रीत जुटाने वाला है ।

विघ्न डाले हजार जन, मन कभी नहीं हिलता है,
याद कर एक शिव पिता को, ज्ञान झूले में झूलता है ।

इस प्रकार आत्मिक भाव विश्व में बन्धुत्व की भावना जागृत करता है । ईर्ष्या, बैर, द्वेष की भावना भुलाकर एकता के सूत्र में बाँध देता है । मायावी रंग से छुड़ाकर आत्मा की सच्ची रक्षा करता है ।

(२) सहयोग रूपी रंग

जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने सभी गोप-गोपियों के अंगुली के सहयोग से गोवर्धन पर्वत उठाया, इसी प्रकार इस दु:खमय, कलियुगी संसार का पहाड़ हटाने के लिए अगर हम सभी एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना रखें तो अवश्य सर्व के सहयोग से सुखमय संसार की स्थापना होगी । कहा भी जाता है–'सहयोग दो, सहयोग लो' । क्योंकि मनुष्य जीवन बचपन से लेकर बुढ़ापे तक बिना सहयोग के नहीं चल सकता । भले कोई देह अभिमान में आकर कहे कि 'मुझे किसी की जरूरत नहीं, मुझे किसी की परवाह नहीं है ।' इस प्रकार का अभिमान-युक्त कथन निरर्थक है । इसलिए सदा सहयोग का रंग मन को लगाओ तो सदा प्रसन्न रहोगे ।

मिथ्या अभिमान छोड़कर, रंग लगाओ सहयोग का,
अपकारी पर उपकार करो, यह लक्ष्य है राजयोग का

ऐसी विशाल भावनाओं से हृदय को भरने से न सिर्फ मनुष्यात्माओं का परन्तु परमपिता परमात्मा का भी सहयोग मिलता है ।

(३) सुख रूपी रंग

वर्तमान समय इस रंग की कमी चारों तरफ देखने में आती है । भले पुत्र-परिवार, मकान, महल, मोटर, सब कुछ हो परन्तु सुख-चैन की लहर का अनुभव किसी को है नहीं । सभी मनुष्य कोई न कोई कष्ट से, रोग से, शोक में या दु:ख में पीड़ित हैं । उनकी रग-रग में दु:ख का रंग व्यापक है । किसी के पास धन नहीं है तो उसकी चिन्ता, किसी के पास धन ज्यादा है तो उसे संभालने की चिन्ता, किसी को पति का दु:ख तो किसी को पत्नी का, बहू को सास का दु:ख, सास को बहू से ज्यादा दहेज न मिलने का दु:ख । मतलब कि इस संसार में सम्पूर्ण सुखी कोई है ही नहीं ।

हे मन, सुख का रंग प्राप्त कर, सुखसागर शिव बाप से
मुक्त होगा अनेक चिंताओं से, बच जाएगा तू पाप से ।

इस प्रकार सुखसागर परमात्मा पिता से प्रीत जोड़ने से दुःखमय संसार से पार हो सदा सुखमय संसार का अनुभव करेंगे ।

(४) शान्ति रूपी रंग

आज विश्व के हर कोने में अशान्ति का साम्राज्य फैला हुआ है । जहाँ देखो वहाँ लड़ाई-झगड़ा, वैर-विरोध, हिंसा, अत्याचार ही दिखाई पड़ता है । सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक हर क्षेत्र में मानव अशान्ति का अनुभव कर रहा है । जहाँ देखो वहाँ भूख, गरीबी, अकाल मौत ने मानव जीवन को सुख रहित-बना दिया है । शान्ति की प्राप्ति के लिए वह जहाँ-तहाँ ठोकरें खा रहा है । मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, वेद-शास्त्र, पुराणों में वह शान्ति ढूंढ़ रहा है । विज्ञान के बल से शान्ति की खोज में वह चन्द्रलोक, मंगललोक में जा रहा है परन्तु शान्ति का रंग कहीं भी नजर नहीं आता ।

भूल गया निज स्वरूप को, शान्ति गले का हार है
बह रही है धारा हृदय में ही, ढूंढ़ता तू कहाँ बाहर है ?

इस शान्ति के सर्वश्रेष्ठ रंग को सदा अपने साथ रखो । अंतर्मुखी बनो, एकांतवासी बनो, खुद के स्वरूप का ही चिंतन करो तो आपकी रक्षा स्वतः ही हो जायेगी ।

(५) सम्पन्नता रूपी रंग

यह रंग अपूर्ण को संपूर्ण बनाता है । हम जानते हैं कि हर इंसान में कोई न कोई अवगुण होता है परन्तु साथ-साथ कोई न कोई गुण भी अवश्य होता है । इसलिए अपनी वृति को गुणग्राही बनाओ । सम्पन्नता का रंग दोष-दृष्टि से आत्मा की रक्षा करता है, मन से घृणा भाव का त्याग कराता है, व्यर्थ संकल्पों से मुक्त कर श्रेष्ठ शुद्ध संकल्पों में रमण कराता है, विकारयुक्त विचारों के काले रंग से दूर करता है । सम्पन्नता का रंग जिसको लगा हो वह कभी यह नहीं सोचेगा कि हम सत्य मार्ग पर चलते हुए भी दुःखी हैं और पापी लोग मौज मना रहे हैं । इस प्रकार के ख्यालात मनुष्य को सम्पन्नता के रंग से दूर करते हैं । इससे–

सर्वगुणों के खजानों से वंचित रह जाता है,
भरपूर होने के बजाए शक्तिहीन बन जाता है ।

यह सम्पन्नता का रंग गुणों के, ज्ञान के, शक्तियों के खजानों से भरपूर कर श्रीकृष्ण समान १६ कला सम्पूर्ण बनाने वाला है

(६) सन्तुष्टता रूपी रंग

संतुष्टता मानव जीवन का सच्चा धन है परंतु मानव-वृति ऐसी है जो कभी तृप्त नहीं होती । सब इच्छाएं पूरी होने के बावजूद भी कोई न कोई इच्छा रह जाती है । हर सुख होने के बाद भी इंसान तृष्णाओं के अधीन होने के कारण निराश, उदास रहता है । असन्तुष्ट वृति उसके फूल समान जीवन को काँटे मिसल और हीरे जैसे मन को कौड़ी मिसल बना देती है । सर्वोत्तम भाग्य मिलने के बावजूद भी वह भाग्य पर रोता ही रहता है – 'क्या मेरा यही भाग्य है ? भगवान ने मुझे धन दिया परन्तु कुबेर जितना देता तो ! मेरी किस्मत ही फूटी है, मुझे कहीं भी यश नहीं है ।' ऐसे अनगिनत विचारों से वह खुद भी असन्तुष्ट रहता है और दूसरों को भी असन्तुष्ट करता है । कहावत भी है –'संतोषी नर सदा सुखी' परन्तु आशा तृष्णा के अधीन मन उसे चैन की साँस लेने नहीं देता । इसलिए परमपिता परमात्मा भी कहते हैं – 'हे बच्चो ! आप हर परिस्थिति में सन्तुष्ट रहो । जिस समय जो होता है उसमें कल्याण समाया हुआ है ।'

किसलिए गँवाते हो समय, संभालो संतुष्टता के धन को,
रक्षा करे जीवन की, स्वच्छ करे वह मन को ।

सन्तुष्टता रूपी धन को जीवन में धारण करने से मानव देव बन जाता है ।

(७) सरलता रूपी रंग

वाह, कितना सुंदर है यह रंग देता है सबको उमंग ! सरल स्वभाव सभी के मन को जीत लेता है । सरल स्वभाव वाला व्यक्ति नम्रचित, उदारचित होने कारण न सिर्फ दिलपसंद, लोकपसंद परन्तु वह प्रभुपसंद भी बन जाता है । जिसने खुद को सरलता का रंग नहीं लगाया, वह हमेशा पछताता है, वह किसी के प्रति शुभभावना रख नहीं सकता, मान-अपमान सहन कर नहीं सकता । वह झूठे अभिमान में रहता है अहं और अंधकार के कारण, ज्ञान के अलंकार छोड़ देता है, माया से मन को मोड़ने के बजाये, प्रभु से मन मोड़ लेता है ।

सरलता का रंग परमात्मा के वर्से का अधिकारी बनाता है, मानव जीवन को राग, द्वेष से मुक्त कर जीवन को धन्य बनाता है ।

भूलो नहीं, छोड़ो नहीं सरलता का रंग
रक्षा करे तन-मन की, खुश करे अंग-अंग ।

आओ, ऐसी स्वर्णिम सुखमय संसार की अनुभूति कराने वाली, नवयुग के नवप्रभात का अनुभव कराने वाली, पवित्रता के शुद्ध संबंधों के भाव जगाने वाली, मानव जीवन को विकारों से दूर करने वाली सप्तरंगी राखी रक्षाबंधन के दिन बाँधें और परमपिता शिव परमात्मा के साथ मन के तार जोड़ें – यही जीवन की सच्ची-सच्ची रक्षा है अर्थात् राखी का सच्चा-सच्चा पर्व मानना है ।

दूसरों को दुःख देकर कमाया गया धन सुखोत्पादक नहीं होता

चले फरिश्ते मधुबन से........

ब्र० कु० रामदयाल, माऊन्ट आबू

वैज्ञानिक जगत में तीर्थ-यात्रायें करना बहुत सहज हो गया है। विज्ञान ने साधनों का आविष्कार किया। साधनों के द्वारा यह नवीनिकरण देख उसी के उपभोग में व्यस्त मानव जंजीरों में जकड़ता गया। यह सत्य बिल्कुल उसकी बुद्धि से निकल गया कि आध्यात्मिकता भी शक्ति है। इसलिये, आध्यात्मिक शक्ति की झलक दिखाने मधुबन तपोभूमि से ३४ फरिश्तों का एक झुण्ड ४ जून १९८८ को पूर्व दिशा की ओर रवाना हुआ।

फरिश्ते उड़ चले—राजस्थान की धरणी से

इस भूमि की इतिहास में बहुत महिमा है। मीरा ने भी इसी भूमि में जन्म लिया। कला, संगीत से यह भूमि सम्पन्न है। इस भूमि को स्वयं भगवान् ने पसन्द कर अपना विश्व परिवर्तन का केन्द्र बना दिया है। आज विश्व की आत्मायें इस स्थान (माऊन्ट आबू) को चरित्रभूमि, तपस्या भूमि के नाम से जान रहे हैं। राज्य-अधिकारियों की भूमि हमें भी स्वराज्य-अधिकारी बनने की प्रेरणा दे रही है। रतनागर परमपिता की कर्म-भूमि हम सर्व को नई सतयुगी दुनिया का नक्शा स्पष्ट दिखा रही है।

विजयी रतनों का झुण्ड पहुंचा स्नेहमयी भूमि गुजरात में

इस भूमि में पदार्पण करते ही स्नेह की किरणें चारों दिशाओं में फैलती नज़र आ रही थीं। स्नेह और सहयोग का मधुर संगम इस भूमि पर प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहा था। इस अनोखे दृश्य को देखते ही मन मोहित हो गया। भाग्यविधाता ने जैसे इस भूमि में यह विशेषता भर दी हो। सूरत नगर की धरणी ने हम सभी होली-हंसों पर एक अलौकिक प्यार की छाप डाल दी। इनके सूरत से भगवान—ज्ञान सागर की मूर्त्त स्पष्ट नज़र आ रही थी। यह सजी हुई चेतन मूर्त्तियाँ मानो सारे जहान को एक दिव्य सन्देश दे रही थीं। इस रूहानी मण्डली ने इस धरणी की विशेषता को देख उस बेहद के बागवान पिता का और उनकी मुख-सन्तान का दिल से धन्यवाद किया। ऐसा स्नेही ब्राह्मण परिवार फिर सृष्टि नाटक के अन्त में (कल्प) एक ही बार संगमयुग पर मिल रहा है। इसलिए रचयिता परमात्मा की स्मृति बार-बार आ रही थी।

भगवान् के वत्सों का पदार्पण महाराष्ट्र में

इस धरणी की तो महिमा स्वयं सर्वशक्तिवान परमात्मा भी करते हैं जहाँ लोकमान्य तिलक, सन्त ज्ञानेश्वर, विनोबा भावे जैसी महान् विभूतियों ने जन्म ले राष्ट्र निर्माण का बीज डाला है। इस धरणी में प्रवेश करते ही विश्व के मालिकपन की छाप बुद्धि में बैठ गई। सब के अन्दर महानता के चिह्न नज़र आ रहे थे। अमूल्य खजानों के भण्डार यह धरणी जन-जन को ज्ञान-रत्न लुटा रही थीं। यह पुष्पक (बस) जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा था, इस धरणी ने अपने तरफ आकर्षित कर लिया। वायु के गति समान यह पुष्पक (बस) आगे शीतल लहरों में लहराते मानो दर्शा रहा था कि— 'हे प्रभु-प्रिय सन्तानो ! चलो स्वर्णिम युग की ओर। नई सृष्टि आप राज्य-अधिकारियों के स्वागत के इन्तज़ार में है।' इस प्रकार यह होली-हंस मण्डली इस धरणी से अपने शक्तिशाली वायब्रेशन्स फैलाते आगे बढ़ गई।

सूरत सेवा केन्द्र पर मधुबन निवासी भाई बहनों के पहुँचने पर उनका हार्दिक स्वागत किया जा रहा है।

अकोला—मधुबन से पधारी ३४ होली-हंसों की मण्डली अकोला के भाई-बहनों के साथ एक ग्रुप फोटो में।

महावीरों का संगठन–मध्य प्रदेश में

यह भूमि अपने आपमें विशालता का मार्गदर्शक है। विस्तार की भूमि सिद्ध कर सकती है कि हमने ज्ञान का विस्तार कितना किया है ? नागपुर, भण्डारा सेवास्थानों से गुजरते हुए इस धरणी की अपनी विशेषता नज़र आ रही थी। हरियाली से सम्पन्न प्रदेश मानो याद दिला रहा था–'आओ, भगवान् के सपूत लालो ! आओ, मेरी गोद का आनन्द लो ! भगवान् के कार्य में सहयोगी हो, तो मेरा भी सहयोग लो। मेरी भुजाओं में समा जाओ।'

अब हमारा रायपुर नगरी में पदार्पण हुआ। वह दिन था ७ जून का। वर्षा रानी भी हम फरिश्तों का स्वागत किए बिना रह न पायी। गर्मी और शीतलता का मधुर संगम देखते मन लुभायमान हो रहा था। ३४ फरिश्तों की रूहानी झलक सर्व के ऊपर अमिट छाप डालते मधुबन धरणी की मधुर खुशबू फैला रही थी। किसी ने प्रश्न पूछा–'कहाँ से आये हैं यह सफेद वस्त्रधारी?' बड़े मधुर स्वर में उसे उत्तर मिला – मधुबन से'। ओहो ! कितनी तपस्वी महान् धरणी है जहाँ सारे विश्व के करन-करावनहार परमात्मा ने स्वयं अपने कर-कमलों से चैतन्य फूलों को सींचा है, उनमें दिव्यगुणों की खुशबू भरी है जिसे ये फरिश्ते चारों ओर बिखेरते जा रहे थे।

बुरहानपुर सेवाकेन्द्र के भाई बहनें तथा मधुबन से पधारी होली-हंस मण्डली एक ग्रुप फोटो में।

उड़ते पंछी उड़ चले उड़ीसा की ओर

इस धरणी से स्पष्ट आभास हुआ – 'कैसे भक्ति का पुर इस भूमि में आया !' सम्बलपुर हमारा पहला स्टॉप था जहाँ भक्ति और ज्ञान के मधुर संगम का दृश्य नज़र आया। यह अनोखा दृश्य देख पतित पावन परमात्मा और उनकी रचना ब्राह्मणों के प्रति दिल से शुक्रिया निकल रहा था। स्नेह की भावनाओं का पुर यहाँ देखने को मिला। जगतपिता का भी यादगार (जगन्नाथ जी का मन्दिर) इस 'पुरी' पुण्य भूमि में देखा जो सारे जगत् के कल्याणकारी परमात्मा के दिव्य कर्त्तव्य की याद दिला रहा था। पुरी का लहराता हुआ सागर का किनारा मानो कह रहा था कि 'मेरे इन स्नेह की लहरों में समा जाओ। स्नेह के सागर में डुबकी लगाकर इसका रसास्वादन कर लो। पुरी नगरी की अपनी विशेषता है। १५ जुलाई को यहाँ जगन्नाथ जी के मन्दिर से बहुत बड़ी संख्या में बड़े रथ पर सवार जगन्नाथ जी की भव्य रथ-यात्रा निकलती है। इसका आध्यात्मिक अर्थ है कि जगन्नाथ जी सारे जगत् के नाथ, स्वामी हैं। वह जब धर्म-ग्लानि के समय आते हैं तब मानवी रथ का आधार लेते हैं। सारे जगत के परमपिता एक ही हैं। वह अशरीरी, निराकार हैं। इसलिए प्रजापिता ब्रह्मा के शरीर रूपी रथ में दिव्य प्रवेश होकर सारे विश्व का कल्याण करते हैं।

भगवान् के सपूत चले बंगाल की ओर

यह उड़ते होली हंस कटक नगरी छोड़ चुके थे। उड़ीसा और बंगाल का संगम हो रहा था। १० जून को यह टोली सकुशल कलकत्ता पहुँच गई। वैसे यह भूमि विद्वानों की भूमि है। सुभाष चन्द्र बोस, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द जैसे जगत् प्रख्यात विद्वानों ने इसी भूमि पर जन्म लिया। इन भारत माँ के लालों की महिमा कौन नहीं गाता? ऐसी धरणी का हम भगवान् के सपूतों ने भी दिल से स्वागत किया। सन् १९३७ में जो दादा लखीराज बाबू के नाम से जाने जाते थे, उन्होंने कलकत्ता में हीरे-जवाहरों का व्यापार शुरू किया। इन्हीं दिनों में उन्हें "विष्णु चतुर्भुज" का साक्षात्कार हुआ। तब से उन्हें परमपिता परमात्मा शिव ने 'प्रजापिता ब्रह्मा' यह कर्त्तव्य-वाचक नाम दिया। इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी इस धरणी का बहुत बड़ा सौभाग्य रहा है। ऐसे महत्वपूर्ण स्थान का हम होली हँसों ने अच्छी तरह से अवलोकन किया। यहाँ पर बहुत अच्छी-अच्छी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हम सभी फरिश्तों को होती रहीं जिनकी जीवन में अमिट छाप छप गई और यह दिन हमारे लिए एक यादगार बन गया है।

भगवान् के घर के शृंगार–बिहार धरणी में

इस धरणी की अपनी ऐतिहासिक महानता, विशेषता है। गौतम बुद्ध जैसी श्रेष्ठ विभूति ने इसी भूमि पर जन्म लिया। बौद्ध गया, राजगिर, सारनाथ–इन स्थानों पर आज भी इनकी यादगार स्पष्ट नज़र आती है। इस स्थली का स्वमान बढ़ाने के निमित्त यह श्रेष्ठ आत्मा बनी। अगर यह अपने जीवन का लक्ष्य' पवित्रता' नहीं रखती तो आज इनके चरित्र की महिमा नहीं गाई जाती। परमपिता शिव भी कहते हैं–'हे रूहो ! इस अन्तिम जन्म में पवित्र बनो, राजयोगी बनो।' पवित्रता इस जीवन का शृंगार है, शान है, इस जीवन की

शोभा है। पवित्रता नहीं तो जीवन जैसे मुर्दा है। संसार की सब से बड़ी शक्ति है 'पवित्रता' जिसकी महानता स्वयं निराकार परमपिता शिव परमात्मा ने प्रजापिता ब्रह्मा के तन द्वारा सुनायी कि—हे रूहो ! तुम्हें जब तक जीना है, तब तक इस व्रत को निभाना है।'

उड़ते फरिश्ते अब उड़ चले—उत्तर प्रदेश की ओर

धार्मिक रीति से इस धरणी का अपना अलग ही विशेष स्थान है ।हम सभी उड़ते पंछी इस भूमि की कला-कौशल को देख बड़ी उत्सुकता से आगे बढ़ने लगे। वाराणसी इस कौशल्य के लिए प्रसिद्ध है। हमारी प्राचीन अर्थात् आदि सतयुग की अनेक यादगारों का यहां के मन्दिरों में अच्छा दिग्दर्शन होता है। काशी-कलवट अर्थात् शिव परमात्मा पर बलि चढ़ने का स्थान देख हम सबमें नई जागृति पैदा हुई। मन, बुद्धि, संस्कारों से 'शिव' परमात्मा पर बलि अर्थात् समर्पण होना—इसकी निशानी यह काशी-कलवट खाने की प्रथा चली आयी। सृष्टि चक्र के अन्तिम समय पर जिसको धर्म ग्लानि का समय कहते हैं, ऐसे सन्धिकाल में ही परमपिता शिव परमात्मा ब्रह्मा के तन द्वारा सहज ज्ञान सुनाते हैं। जो आत्मायें इस ज्ञान को धारण करतीं, वही सच्चे अर्थ में भगवान् पर बलि चढ़ते हैं, जिन्हें सर्वोत्तम ब्राह्मण कहा जाता है। कानपुर, इलाहाबाद, लखनऊ आदि स्थानों पर प्राचीन संस्कृति का स्पष्ट साक्षात्कार हम सब ने अच्छी तरह से किया।

विजयी रत्नों का झुण्ड अपने स्वीट होम, मधुबन में

अब हम सभी उड़ते होली हंसों की वापिसी-यात्रा थी। सभी के खुशी का पारावार न रहा क्योंकि २२ दिनों के बाद अपने तपस्या-भूमि (माऊण्ट आबू) में लौट रहे थे। स्वयं भाग्यविधाता ने अनेक आत्माओं का भाग्योदय इस तपो-भूमि में ही किया है जो सारे विश्व में शान्ति की किरणें फैलाते विश्व परिवर्तन का श्रेष्ठ कार्य कर रहे हैं। जिन्हें लोग ब्रह्माकुमार/ब्रह्माकुमारी के नाम से जानते हैं। यह स्थान विश्व भर में एक शान्ति का केन्द्र बन गया है। रास्ते में जयपुर, अजमेर, पुष्कर आदि स्थानों का भी परिभ्रमण किया। जयपुर नगरी में राजाओं के महल, सोनी द्वारिका—यह हमारे प्राचीन संस्कृति की यादगारें हैं। पुष्कर में ब्रह्मा जी का मन्दिर देखा। ब्रह्मा जी को वेदों, शास्त्रों का ज्ञाता बताते हैं। उनके हाथों में वेद, शास्त्र दिखाते हैं। बहुत स्पष्ट बात है। यह नाम उनका कर्त्तव्यवाचक है। तभी तो कहते हैं—ब्रह्मा द्वारा नई सृष्टि की स्थापना। अब वह शुभ घड़ियां चल रही हैं। उसे हमें दिव्य बुद्धि से जानना है। यह सभी यादगारें देखते हम होली-हंसो की यह मण्डली अपने स्वीट होम 'मधुबन' में सायं ७.३० बजे पहुँची।

(पृष्ठ २० का शेष)

मनोविज्ञान, आध्यात्मिक विद्या अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान की सूचना का प्रतीक है। मनोविज्ञान यानि राजयोग द्वारा ही अपने विचारों में शुद्धता तथा दृष्टिकोण में सही दिशा ला सकते हैं। आध्यात्म हीन विज्ञान अंधा है और विज्ञान हीन आध्यात्मिकता अधूरी है। दोनों का मिश्रण मानवता की सम्पूर्ण सेवा के लिए अति आवश्यक है। राजयोग ही केवल एक मात्र साधन है जो हमें जीने की कला सिखलाता है और हमारे जीवन में रमणीकता लाता है। राजयोगाभ्यास द्वारा ही तनाव मुक्त, सफल और आदर्श जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

फिरोजपुर (कैन्ट)—लोकोशेड के फोरमैन भ्राता सुरजीत सिंह को 'सुखमय संसार' के मॉडल पर व्याख्या देती हुई ब्र० कु० उषा बहन।

राजनादगांव—ग्राम डोम्हाटोला में आयोजित एक आध्यात्मिक समारोह में प्रवचन करती हुई ब्र० कु० पुष्पा बहन।

भोपाल—बैरागढ़ सेवाकेन्द्र द्वारा आयोजित 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार प्रदर्शनी' का उद्घाटन भ्राता ज्ञान चन्द जी मोमबत्ती जलाकर करते हुए।

अकोला में मधुबन निवासी भाई-बहनों के आगमन पर कृषि महाविद्यालय के उपकुलपति ब्र० कु० चन्द्रहास जी का स्वागत करते हुए।

करौली में सेवाकेन्द्र के नये भवन का शिलान्यास करते हुए ब्र० कु० दादी रत्न मोहिनी जी।

सिकन्दराबाद में आयोजित योग-भट्ठी में उपस्थित भाई-बहनें आबू-पर्वत से पधारे ब्र० कु० सूरज कुमार जी के साथ एक ग्रुप फोटो में।

सिकन्दराबाद सेवाकेन्द्र के १०वें वार्षिक समारोह में आंध्रप्रदेश के हाऊसिंग मंत्री भ्राता जी० राजेशम गौड़ जी भाषण करते हुए।

विशाखापटनम—तनुकु (प० बं०) में राजयोग सेवाकेन्द्र का उद्घाटन भ्राता बाई० सत्यनारायण, भू० पू० उप न्यायाधीश टेप काटकर करते हुए।

यह संसार स्मृति-विस्मृति का खेल है

ब्र० कु० प्रोफेसर कालिदास, अहमदाबाद

इस संसार का यदि यथार्थ मूल्याँकन किया जाय, तो ऐसा कह सकते हैं कि यह स्मृति विस्मृति का खेल है। मनुष्य बचपन से लेकर जीवन की अंतिम घड़ियों तक कितनी स्मृतियों के भंडार को अपनी आत्मा में धारण करता है ! ये स्मृतियाँ उसे आनन्द, उल्लास का और व्यथा, वेदना का अनुभव कराती हैं। इन स्मृतियों के दो प्रकार हैं। (१) सुखद स्मृतियाँ, (२) दुःखद स्मृतियाँ।

किसी मीठी स्मृति, सुखद घड़ियों की याद आने से ही चेहरा खिल उठता है जबकि जीवन में आघात पहुँचाने वाली, कष्ट देने वाली, वेदना और शोक में संतप्त करने वाली स्मृति मनुष्य को दुःख का अनुभव कराती है। स्मृति के सहारे कितनी ही आत्माएँ अपना जीवन बिताती हैं। स्मृति गौरव की याद दिलाती है, कर्त्तव्य की याद दिलाती है, दुःख की घड़ियों में सांत्वना दिलाती है। भूलों से सबक सिखलाकर भविष्य में सुधार लाती है। स्मृति संबधों को जारी रखती है। मनुष्य के जीवन में धूप-छाँव में स्मृति का साथ कितना उपयोगी सिद्ध होता है ! स्मृति भूतकाल को ज़िन्दा रखती है। यदि स्मृति नहीं रहती तो मनुष्य का जीवन कितना दुःखमय बन जाता है ! स्मृति, अक्षर की आराधना कराती है, जीवन में नये-नये रंग धारण कराती है। संबंध, स्मृति का प्राणवायु है। मनुष्य का मन जहाँ जाता है वहाँ स्मृति की यात्रा का आरंभ होता है। स्मृतियों में भी कितना वैविध्य है ! बाल, युवा और वृद्ध की स्मृतियों में भी कितनी भिन्नता है ! स्मृति मन को देश काल का, समय का बंधन भुलाकर कहाँ-कहाँ ले जाती है ! ये स्मृतियाँ स्थिति का निर्माण करती हैं। जीवन को हसाँनेवाली, रूलाने वाली, बैचेन करने वाली स्मृति है। स्मृति का लगातार प्रवाह जीवन में राग और त्याग का अनुभव कराता है। आशावादी स्मृतियाँ मानव-जीवन में उपयोगी सिद्ध होती हैं। जिसकी स्मृति शक्तिशाली होती है उसका प्रभाव भी विशेष रहता है। स्मृति,नौकरी धंधा, विभिन्न कलाओं में सहायक सिद्ध होती है। शक्तिशाली स्मृति शिक्षा की परीक्षाओं में और जीवन की परीक्षाओं में सफलता दिलाती है।

विस्मृति भी जीवन में स्मृति जितनी ही महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य यदि भूल नहीं सकता तो पागल बन जाता। मनुष्य को आघात, वैरविरोध, कटुता, अपमान, अवहेलना, मृत्यु की चोट आदि की विस्मृति होने से जीवन हल्का और सरल बनता है। अनावश्यक, व्यर्थ बातों की विस्मृति ज़रूरी है। मनुष्य के जीवन में कितनी घटनाएँ, प्रसंग बनते हैं ! इन सबको भूलने से जीवन हल्का बनता है। जीवन में थकावट का अनुभव नहीं होता। समय, संयोग, वातावरण अनुसार स्मृति-विस्मृति का खेल चलता रहता है। दुःख को भुलाने में विस्मृति महत्त्वपूर्ण है। विस्मृति से अनासक्त, नष्टोमोहा, उपराम बनने में मदद मिलती है। विस्मृति संबंधों को सुधारने का कार्य करती है। मानसिक चोट आदि ज़ख्मों को मिटाने का कार्य करती है। मनुष्य को लंबे समय की और पिछले जन्मों की विस्मृति होती है, यह कितना कल्याणकारी है ! वर्ना पिछले संबंधों की स्मृतियों के बंधन उसके जीवन को विशेष दुःखदायी, समस्यापूर्ण बना देंगे।

विस्मृति, आत्मा रूपी कागज़ पर लगी व्यर्थ छाप को पोंछने की रबर है। इससे देवत्व की प्रालब्ध का क्षय होने से होने वाली गिरती कला का दुःख नहीं होता। वह दीर्घायु देती है। असफलता, धंधे में नुकसान, पराजय जैसी घटनाओं में विस्मृति मरहम का कार्य करती है। मनुष्य जब दुःखदायी स्मृतियों को भूल नहीं सकता है तो कभी मौत के हवाले हो जाता है। ऐसे मरीज़ को दवाएँ देकर बेसुध बनाया जाता है तथा नींद की गोलियां खिलाई जाती हैं। जीवन को सफल बनाने के लिये हमें किन स्मृतियों को प्रत्यक्ष करना होगा और कुछ को विस्मृत करना होगा। इसमें राजयोग सहायक हो सकता है।

स्मृति और विस्मृति दोनों जीवन रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। जीवन में दोनों का महत्त्व है। ऐसी दोनों पर आधारित थोड़ी सी जीवनोपयोगी बातों पर हम विचार करते है !

मनुष्य को अपने दोषों की स्मृति होनी चाहिए, जिससे वह महसूसता की शक्ति के द्वारा जीवन परिवर्तन कर सके। हमने किसी पर उपकार किया है तो उसकी विस्मृति होनी चाहिए जिससे हम अंहभाव से मुक्त रह सकते हैं। किसी से हमारे लिए किये गए उपकारों की, सहयोग की स्मृति होनी चाहिए जिससे हम उनका ऋण चुक्ता कर सकें। जब किसी ने हमारा अहित किया हो तो उसकी विस्मृति होनी चाहिए। जहाँ कर्त्तव्य है, समय-बद्धता है, नियमितता है, धर्मकार्य है वहाँ स्मृति रहनी चाहिए। मनुष्य-मनुष्य के बीच घृणा, फूट निर्माण करनेवाली भेद की दीवारों को भूलने के लिए विस्मृति चाहिए। आत्मभाव की स्मृति चाहिए, देहभाव की विस्मृति होनी चाहिए। आनेवाली सतयुगी सृष्टि की स्मृति होनी चाहिए, नर्क की विस्मृति चाहिए। दिव्यगुणों की स्मृति होनी चाहिए और दुर्गुणों की, विकारों की विस्मृति होनी चाहिए।

राजयोग के संदर्भ में स्मृति के बारे में कहें तो स्मृति स्वरूप बनना अर्थात् निरंतर आत्मिक स्मृति, परमात्म-स्मृति, परमधाम की स्मृति, मुक्ति, जीवन मुक्ति की स्मृति होनी चाहिए। पुराने स्वभाव, संस्कार, संबंध, संपर्क की विस्मृति होनी चाहिए जो मरजीवा, दिव्य-जन्म के लिए उपयोगी है।

मनुष्य जीवन में स्मृति-विस्मृति का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है ! जीवन के साथ जुड़ी हुई प्रत्येक चीजों को यदि यथार्थ स्वरूप में लेते हैं तो वे उपयोगी सिद्ध होती है।

तनाव-मुक्त जीवन

डा० पी० एस० वर्मा, हिसार

हर व्यक्ति अपने जीवन में सुख, आनन्द, शान्ति, समृद्धि तथा स्वस्थ स्वास्थ्य चाहता है। उस का ऐसा सोचना तथा चाहना स्वाभाविक भी है क्योंकि ये सब जीवात्मा के मूल गुण हैं। वह जीवन में रमणीकता लाने का भरसक प्रयास भी करता है। क्या वास्तव में हम सही ढंग से जी रहे हैं? जब भी किसी से प्रश्न करो कि आप का हाल और मिज़ाज कैसा है तो बहुत लोगों का उत्तर एक-सा ही होता है कि बस, जी रहे हैं। इस से यह प्रतीत होता है कि मनुष्य अपने जीवन में संतुष्ट नहीं है और जीने की कला से भी वंचित है। वह अपने में अभाव व हीनता का अनुभव कर रहा है।

क्या हम सफल जीवन जी रहे हैं? कदाचित नहीं। आज मानव अशान्त ही नहीं बल्कि चिंताग्रस्त तथा तनाव ग्रस्त भी है। साधन सम्पन्न लोग भी मानसिक तनाव से पीड़ित हैं। सारा संसार मानसिक और सामाजिक स्तर पर अस्वस्थ है।

मानसिक तनाव के मुख्य तीन कारण

१. जीवन में कुछ समस्याएं तथा घटनाएं ऐसी उत्पन्न हो जाती हैं जो हमारे मन को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के तौर पर साधन-हीनता (निर्धनता) बेरोज़गारी, व्यावसायिक, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याएं मनुष्य के प्रति चुनौती बन कर आती हैं और समाधान न मिलने पर मानसिक तनाव का कारण बनती हैं।

२. मनुष्य के अपने निषेधात्मक विचार व्यर्थ की समस्याएं उत्पन्न कर देते हैं, जिन का वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं होता। आज मनुष्य भय, चिंता, व्याकुलता, ईर्ष्या तथा शंका के बादलों की छत्रछाया में जी रहा है। उस के ये निषेधात्मक विचार ही मानसिक तनाव के कारण हैं।

३. मनुष्य की अपनी विकार-वृत्ति, स्वयं तथा समाज में अशान्ति का वातावरण पैदा कर रही है व मानव लोभवश धन इकट्ठा करने तथा सत्ता हथियाने के लिए हर प्रकार के अनियमित तौर-तरीके अपना कर समाज के चित्र तथा चरित्र दोनों को बिगाड़ रहा है। वह विकारों के वशीभूत होकर समाज-विरोधी गतिविधियां अपना कर स्वयं तथा समाज में मानसिक और सामाजिक अस्वस्थता जैसी परिस्थितियां पैदा कर रहा है। मानसिक तनाव-ग्रस्त व्यक्ति स्वयं तथा अन्य को भी व्याकुल, अशान्त तथा दुखी रखता है।

मानसिक तनाव तथा स्वास्थ्य

जीवन में सीमा-बद्ध तनाव हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अति-आवश्यक है। हम अपनी कार्यप्रणाली को चिन्तन के बिना सुचारु रूप से नहीं चला सकते। मानसिक तनाव जब चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब यह स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाता है।

मन का शरीर से घनिष्ठ संबंध है। मन, शरीर के हर अंग को प्रभावित करता है। मुखड़ा मन की स्थिति का प्रतीक है। स्वस्थ मन का वास स्वस्थ तन में होता है। मानसिक तनाव स्वास्थ्य को काफी हद तक हानि पहुँचाता है। मानसिक आवेग शारीरिक पद्धतियों की आंतरिक रचना एवं कार्य प्रणाली को प्रभावित करके भिन्न-भिन्न प्रकार के मानसिक तथा मनो-शारीरिक रोगों को जन्म देते हैं।

तनावयुक्त मन से हल्के प्रकार की लहरें यानि विद्युत-चुम्बक किरणें (Electro Magnetic vibration) उत्पन्न होती हैं। ये किरणें अधश्चेत (Hypothalamus) स्तर पर असर करती है। ये लहरें स्वायत्त तांत्रिका तंत्र प्रणाली (Automic Nervous System) तथा अंतःस्राव प्रणाली (Endocrinal System) को असंतुलित करके भिन्न-भिन्न प्रकार के मानसिक और मनोशारीरिक रोगों को जन्म देती है। मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्ति मादक द्रव्यों, धूम्रपान तथा मद्यपान का सहारा लेकर पतन की ओर अग्रसर होते हैं। इन की ऐसी वृत्ति स्वयं, परिवार, समाज और देश में अशान्ति तथा कुरीतियों का कारण बनती है।

मानसिक तनाव से मुक्ति की युक्ति अर्थात् समाधान

यह एक उचित प्रश्न है कि तनाव से छुटकारा कैसे पाया जाए? अस्थिर मन यानि निर्बल मन ही तनाव की जड़ है। संकल्प हमारे मन का आहार है। शुद्ध विचार मन को स्थिर बनाते हैं। अशुद्ध, व्यर्थ तथा निषेधात्मक विचार मन को अस्थिर और निर्बल बनाते हैं।

शुद्ध विचारों तथा सही दृष्टिकोण को अपनाने से ही मानसिक स्थिरता लाई जा सकती है। भले ही जीवन की कुछ घटनाओं तथा दिन-प्रति-दिन की समस्याओं को बदल न सकें, किन्तु हम अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाकर इन समस्याओं से समझौता करके सदुपयोगी जीवन व्यतीत कर सकते हैं। मानसिक तनाव से मुक्ति शुद्ध विचारों द्वारा ही पाई जा सकती है।

अगर हमारा सोचने का ढंग तथा दृष्टिकोण ठीक है तो मन सदा शान्त रहता है। आयुर्विज्ञान में कोई ऐसी औषधि नहीं जो हमारे काम, क्रोध, और अहं की अग्नि को बुझा सके, न ही कोई ऐसा कैप्सूल और टीका है जो हमारे निषेधात्मक विचारों को परिवर्तित कर सके। इस परिवर्तन के लिए आयुर्विज्ञान के साथ मनोविज्ञान को अपनाने की आवश्यकता है। (शेष पृष्ठ १७ पर)

युवा जागो और जगाओ !

आजकल युवक जब देखता है कि संसार में लोग चर्चा तो उँच से उँच आदर्शों की करते हैं परन्तु व्यावहारिक जीवन में तो बुराई ही पनप रही है और कि यहाँ प्रायः न इंसाफ़ है, न सुनवाई, न सत्यता है, न मन की सफ़ाई, तो उसके मन में एक विद्रोह की भावना उठती है। वह सोचता है कि सारा ढाँचा ही बदल कर रख दूँ। परन्तु जब उसे यह अनुभव होता है कि बुराई तो चारों ही ओर फैली हुई है तब या तो उसमें आक्रोश उत्पन्न होता है या वह निराश होकर सोचता है कि अगर इस संसार में रहना है और जीना है तो जैसे और चल रहे हैं वैसे ही मुझे भी चलना पड़ेगा। गोया वह या तो उत्तेजित हो उठता है और या बुराई से मेल कर लेता है। परन्तु वास्तव में बुराई को देखकर मन में आक्रोश का विस्फुटित होना तो उस बुराई को हटाने की बजाए एक और बुराई को मन में पालना है। पुनश्च, बुराई को देखकर निराश होना या उससे समझौता कर लेना भी दुर्बलता का प्रतीक है और हिम्मत हारने का सूचक है। युवक, बुराई के प्रति ये दोनों ही दृष्टिकोण स्थिति को सुधारने वाले नहीं हैं, पहले इसी सत्य के प्रति जागो और दूसरों को भी जगाओ!

बुराई को देखकर पहले तो मनुष्य के मन में उसे मिटाने की चेष्टा उत्पन्न होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि बुराई मनुष्य की नैतिकता को जगाने के निमित्त बन सकती है। इसलिये उत्तेजना आने की बजाए तो युवा-वर्ग में जागृति आनी चाहिये और बुराई से समझौता करने की बजाए या उससे हार मानने की बजाए मनुष्य को बुराई की चुनौती स्वीकार करनी चाहिये। वह युवक कैसा जो चुनौती को स्वीकार करने से भागता है? वह जवानी कैसी जिसमें कुछ कर गुज़रने की इच्छा की बजाए हथियार डाल देने की चेष्टा उत्पन्न हो? अतः न आक्रोश करने की ज़रूरत है, न बुराई के आधीन होने की बात सोचना अच्छा है बल्कि जो बुराई अन्तरात्मा को कचोट रही है, उसके द्वारा जागने और जगाने का दृढ़ संकल्प लेना ही युवा-शक्ति का सदुपयोग करना है। अब यदि संसार में बुराई बहुत बढ़ गई है तो युवक, जागो और जगाओ, न कि भागो या सो जाओ!

संसार में बुराई को युवक नहीं मिटाएगा तो और कौन मिटाएगा? जो छोटे बच्चे हैं, वे तो संसार को बदलने में अभी सक्षम नहीं हैं। उनके प्रति भी युवकों ही का यह उत्तरदायित्व है कि वे संसार से बुराई को मिटाएँ ताकि ये छोटे बच्चे जब तक बड़े हों तब तक इस संसार से निर्दयता, अन्याय, निरीहता, स्वार्थपरता और पाप मिट चुके हों। जो अतिवृद्ध हैं, उनकी तो अपनी शारीरिक शक्तियां शिथिल होती जा रही है और स्वयं उनके मन में भी यह जो शुभ इच्छा है कि यह संसार अच्छा बन जाए, उसे पूर्ण करना युवकों का ही वृद्धजनों के प्रति अपना दायित्व निभाना है। उन वृद्धजनों की भुजा भी तो युवकों को ही बनना होगा। अतः जैसे युवक ही घर की आशा का दीप होता है, वैसे ही आज का युवक ही संसार की आशा का दीपक है। युवक जागेगा तो युग बदलेगा। इसलिए युवक, जागो और जगाओ! बदलो और इस संसार को बदल कर रख दो! सबकी निगाहें तुम पर ही लगी हैं!

संसार को पलटने की जो शुभ इच्छा है, ढाँचे को बदलने का जो संकल्प है, एक नया दौर लाने की जो तमन्ना है, जागृति का वह पहल चिह्न है। परन्तु इस शुभ संकल्प को पूरा कैसे करें? क्या नये विधि और विधानों से यह जग बदलेगा? क्या कानून को कड़ा बनाने और सख्त दण्ड देने से, राजनीतिक नेता और राजनीतिक दल बदलने से आक्रोश व्यक्त करने, नारे लगाने से या विध्वंसात्मक कार्यों द्वारा अपने क्रोध को प्रकट करने से यह संसार सुखमय बनेगा? नहीं, नहीं। कानून और डन्डे के ज़ोर से तो किसी भी समाज को बदला नहीं जा सकता। आक्रोश या क्रोध से कभी भी बिगड़े कार्य संवारे नहीं जा सकते। विध्वंसात्मक कार्यों से तो विध्वंस ही होता है, उससे एक नये समाज की रचना नहीं हो सकती। राजनीतिक नेता या दल बदलने से देश के लोगों की वृत्ति और प्रवृति नहीं बदल जाती। इस सबके लिये तो एक नई क्रान्ति की आवश्यकता है जो हर मनुष्य के मन में नैतिक मूल्य भर दे, हर इन्सान में इन्सानियत को जगा दे, और हर विकृत मन में भलाई उजागर कर दे। युवा जागो, और ऐसी क्रान्ति के लिये दूसरों को भी जगाओ। ये विश्व हमारा है, इसे ठीक करना हम सभी का काम है।

आज का युवक संसार में एक क्रान्ति चाहता है। इतिहास में कई क्रान्तियों का उल्लेख है परन्तु उन क्रान्तियों से विश्व भर में शान्ति नहीं हुई। उनसे मनुष्य में राजनीतिक, आर्थिक अथवा वैज्ञानिक जागृति चाहे हुई हो परन्तु उनसे इन्सान की इन्सानियत नहीं जागी। उन सब क्रान्तियों के बावजूद भी मनुष्य में देवत्व अभी भी सुषुप्त है। हर मनुष्य में अच्छाई का जो बीज है वह अंकुरित नहीं हुआ, बल्कि आज हम देखते हैं कि "प्रगति" करते-करते

आज मानवीय समाज विश्व-संहारक अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण करके अपने ही हाथों अपनी ही हत्या करने की ओर अग्रसर हो रहा है और संसार में घोर पापाचार और अत्याचार पनप रहा है तथा सत्यता और इंसाफ़ का खून हो रहा है। क्या ऐसी स्थिति में भी सोए रहोगे? घोर अज्ञान-निद्रा में पड़े रहोगे? युवक, जागो, संसार में नैतिकता को जगाओ!

यह संसार कैसे बदलेगा? यह सोचने से पहले यह सोचना ज़रूरी है कि मैं स्वयं कैसे बदलूँ? दूसरों को जगाने के लिये पहले स्वयं जागना होता है। विशेष रूप से संसार में नैतिक जागृति लाने के लिये तो पहले अपनी नैतिकता को जगाना ज़रूरी है। विश्व-परिवर्तन की शुरूआत स्व-परिवर्तन से ही हो सकती है। यदि मैं स्वयं ठीक न होऊं तो दूसरे को ठीक होने के लिये मैं किस अधिकार से कह सकता हूँ? विश्व में भलाई लाने के लिये पहले मुझे अपने विचारों, व्यवहार और संस्कारों को दिव्य बनाना आवश्यक है। अतः मूल प्रश्न यह है कि स्वयं मेरी अपनी नैतिक जागृति कैसे हो और फिर दूसरों में भी नैतिक क्रान्ति कैसे लाई जाए? स्वभावतः इसके लिये पहले तो भलाई और बुराई का ज्ञान होना ज़रूरी है और उसके साथ-साथ ऐसे अभ्यास की आवश्यकता है कि जिससे मनुष्य का संकल्प अथवा मनोबल दृढ़ हो और उसके संस्कार बदलें। ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य को अच्छाई और बुराई का बोध हो "ईश्वरीय ज्ञान" कहलाता है और ऐसा अभ्यास जिससे मनुष्य के संस्कार परिवर्तित हों, उसकी बुरी आदतें छूटें और उसकी वृत्तियों का शुद्धिकरण हो "सहज राजयोग" तथा "दिव्य-गुणों की धारणा" कहलाते हैं। ऐसे ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग एवं दिव्य गुणों की शिक्षा से ही संसार में नैतिकता स्थाई रूप से जागृत हो सकती है और विश्व सुखमय अथवा बेहतर बन सकता है। अतः, युवक, अज्ञान-निद्रा को छोड़ कर ऐसी रीति से जागो और जगाओ!

आज युवक संसार में परिवर्तन चाहते हैं– ऐसा परिवर्तन कि जिसमें एक मनुष्य का दूसरे के प्रति स्नेह हो, भातृत्व की भावना हो और शुभ कामना हो तथा इस संसार में सभी सुख-शान्ति से जीवन जीयें। इसका अर्थ यही तो हुआ कि संसार में मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना हो। परन्तु आज तो इन मानवीय मूल्यों का संसार में ह्रास हो रहा है और इनकी शिक्षा भी स्कूलों और कालेजों में नहीं दी जा रही है। आज साक्षरता को बढ़ाने की ओर तो लोगों का ध्यान है परन्तु ऐसा "ईश्वरीय ज्ञान" "सहज राजयोग" या "दिव्य गुणों की धारणा" की ओर समाज का कोई सफल प्रयत्न नहीं हो रहा है जिससे कि बाल-वर्ग और युवा-वर्ग के मन का शुद्धिकरण हो, उनके चरित्र का उच्च निर्माण हो, उनके व्यवहार का दिव्यीकरण हो और उनका आचार श्रेष्ठ हो। दूसरे शब्दों में आज विनाशी ज्ञान, अर्थात् ऐसे ज्ञान की ओर तो ध्यान है जो इस शरीर के नष्ट होने पर प्रायः नष्ट हो जाता है परन्तु ऐसी विद्या की ओर ध्यान नहीं है जो मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव में समावेश करके उसके शरीर छोड़ने पर भी उसके साथ रहे और भविष्य में भी उसके सद्गुणों तथा उसकी सद्प्रवृतियों के रूप में उसके काम आए। इसी का यह परिणाम है कि आज युवा वर्ग में अनुशासन की कमी है और जीवन में असन्तोष है। यही युवा-वर्ग आगे जाकर जब अपनी गृहस्थी रचता है तो वैसे ही आहार और व्यवहार को प्रचलित करता है जो स्वयं उसने अपनाए होते हैं और यही वृद्ध अवस्था में भी उसके साथ रहते हैं और आने वाली पीढ़ियों में भी प्रभाव डालते हैं। अतः अविनाशी ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग तथा दिव्य गुणों या मानवीय मूल्यों की शिक्षा द्वारा ही यह समाज बदल सकता है, नये युग का सूत्रपात हो सकता है और हर आयु-वर्ग में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसलिये, हे युवक, जो क्रान्ति आप लाना चाहते हो, जिस शान्ति को इस संसार में देखना चाहते हो, जिस प्रकार के स्व-अनुशासन का जीवन आपको अच्छा लगता है, उसके लिए इस विधि जागना और जगाना ज़रूरी है!

जब आप से बड़े आपको कोई ऐसी बात करने के लिए कहते हैं जो नैतिकता के विरुद्ध है, जो सदाचार को भंग करने वाली है, जो संसार की भलाई को सामने न रखकर स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त करती है अथवा जो संसार में घृणा, द्वेष, वैमनस्य, मन-मुटाव, तोड़-फोड़ हिंसा, लूट-खसूट, अन्याय, अत्याचार या पापाचार में प्रवृत्त होने का सुझाव देती है तो समझ लो कि वे अपनी बड़ाई में से नीचे उतर कर आपको ऐसा निकृष्ट कर्म करने की राय दे रहे हैं। अतः उस समय आप विनम्र-भाव से एवं आदरपूर्वक रीति से उनसे कह दो कि आपकी अन्तरात्मा आपको गवाही नहीं देती कि आप उस बुरे काम को करे। युवक, आप उनसे ये निवेदन कर दो कि "आप उन बुजुर्गों की हर बात अपने सिर माथे पर लेने को तैयार हैं और उनका हर हुक्म मानने को तैयार हैं परन्तु आपने अपनी अन्तरात्मा को बुराई के पास गिरवी नहीं रखा हुआ है। युवक, उस समय आप शारीरिक रूप से भले ही जागृत होते हो परन्तु अपनी अन्तरात्मा को तो मत सुलाओ! युवक, आध्यात्मिक रीति से जागो और दूसरों को जगाओ! अच्छाई और बुराई के संग्राम में जो अन्तरात्मा को सुला देता है, वह बुराई से घायल हो जाता है। बुराई से अपना आंचल मैला करके भगवान् के सामने कैसे जाओगे?

जो ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग द्वारा स्वयं में

आध्यात्मिक बल नहीं भरते, वे ही निराश अथवा हताश होते हैं। आप यह क्यों नहीं सोचते कि आप परिस्थितियों से परेशान या परास्त होने वाले हैं। युवक, जागो, आप तो ईश्वरीय सन्तान हो, सर्वशक्तिवान परमात्मा के अमृत पुत्र हो! यही बात दूसरों को समझा कर उन्हें भी जगाओ। अपने और उनके स्वमान को जगाओ। पुरुषार्थ रूपी धनुष को धरा पर डाल कर ठोड़ी के नीचे हाथ रखकर बैठना वीरों का काम नहीं, यह युवा-वर्ग का चिह्न नहीं। युवक तो जागती ज्योति या मशाल थाम कर अन्धकार को भगाने वाला प्रहरी या मार्गदर्शक बनता है, वह भयानक परिस्थिति का सामना करने वाला महावीर होता है। अतः आप युवकों की मर्यादा और मान को मिटने न दो बल्कि उठो, पुरुषार्थ रूपी धनुष की प्रत्यन्चा रूपी टंकार करो तो तुम्हारी विजय निश्चित है! जो सत्य का साथ देता है, जो ईश्वर के हाथ में अपना हाथ देता है, वह प्रभु-वत्स है। जो बुराई से मिल जाता है, वह माया का मुरीद है। जो निराश होकर हाथ-पर-हाथ रख कर बैठ जाता है, वह दिल-शिकस्त है और जो परिस्थितियों का सामना करने की बजाए भाग जाता है, वह कायर है। परन्तु आप तो अदम्य उत्साह और अमिट उमंग के धनी हो। अतः उठो और देखो कि यदि किसी भी प्रकार की बुराई के थोड़े-से भी अंश ने आपके मन में कहीं छिप कर भी डेरा डाल रखा है तो उसे वहां से इस बुराई ने संसार में घुस कर यत्र-तत्र-सर्वत्र डेरे डाल दिये हैं और अब इस संसार को माया के जाल से निकालना है और उसके लिये आप पर ही सभी की आशा टिकी है!

बुराई क्या है और भलाई क्या है? पांच तत्वों से बने, हड्डी-मांस के ढांचे की नारी आकृति रूपी चोले को देखकर उससे छेड़-छाड़ करना बुराई है। युवक नारी जाति की रक्षा करने की बजाए यदि नारी को अपमानित करता है, उसके स्वमान को आहत करता है, उसकी लाज लूटने का घृणित कार्य करता है तो मानो कि वह बुराई का ही पक्षधर है। वह स्वयं आत्मा को भूल कर, गोया आत्मा रूपी सत्य पर पर्दा डाल कर अथवा ज्ञान-चक्षु पर पट्टी बान्ध कर विवेक को सुला देता है। अपनी दृष्टि को विकृत करके नारी जाति के वर्चस्व पर कुठाराघात करने का संकल्प करना पाप ही नहीं, महापाप है। यह 'काम' विकार है जिसे "नरक का द्वार" कहा गया है। नारी जाति के प्रति सद्भावना और सद्वृत्ति को छोड़कर, उसके प्रति सम्मान को और अपने "स्वमान" को भूलकर अपने माथे पर कलंक का टीका लेने तथा दूसरे को भी कलंकित करने की कुत्सित चेष्टा बुराई ही तो है। युवक, तुम कभी भी इस बुराई के चक्कर में न फँसना और दूसरों को भी इस दलदल में फँसने से सावधान करना!

घृणा, द्वेष या बदले की भावना की आग को अपने मन में भड़का कर स्वयं भी उसमें जलना और दूसरों पर भी उस क्रोध रूपी आग की गोलाबारी करके उनके साथ शत्रुता का व्यवहार करना बुराई ही का झंडा बुलन्द करना तो है।

फिर, भूख न होने पर अथवा भोजन कर लेने पर भी बार-बार खाना, वस्त्रों और वस्तुओं को आवश्यकता से बहुत अधिक इकट्ठा करना और उसके लिये भ्रष्ट साधन अपनाना तथा दूसरों के अधिकार को छीन कर अथवा उनका शोषण करके या उन्हें वन्चित करके भी अपने संग्रह को बढ़ाना बुराई ही तो है। यह 'लोभ' नामक मीठा विष है जिसके कारण संसार में अन्याय और हाहाकार मचा है। अतः क्रोध और लोभ के भंवर से निकलो और दूसरों को भी बचाने का यत्न करो। युवक, देह-दृष्टि के आधार पर अपने और पराये में भेद करके अपनों को अनुचित लाभ देना और परायों की योग्यता की भी अवहेलना करते हुए उनके साथ अन्याय करना, अथवा अपनों को किसी भी कर्म-भोग भोगते देखकर धीरज को खो बैठना या उनके लिये धर्म को भी छोड़ कर अनुचित रीति से भी उनके लिये धन-साधन इकट्ठे करना बुराई नहीं तो क्या है? इस 'मोह' के कारण ही तो यह संसार शोक सागर बना हुआ है। इसी के कारण ही तो यहाँ लूट-खसूट का बाज़ार गर्म है। अतः तुम इस 'मोह' के चक्रव्यूह को तोड़ डालो और दूसरों के भी शोक के इस कारण का निवारण करो!

अपने शारीरिक बल पर इतराते हुए दूसरों पर आवाज़ कसना, उन पर तुन्का लगाना, उन्हें डराना-धमकाना, किसी नेता से अपना परिचय होने की धौंस जमाना, अपने पिता-पितामह की पदवी या प्रतिष्ठा के बलबूते पर दूसरों से दुर्व्यवहार करना, अपनी विद्या के नशे में चूर होकर अपने सहपाठियों से ऐंठ मारना या अपने अध्यापकों का भी अपमान करना भी बुराई ही तो है। इसी का नाम तो "**अभिमान**" है। इसी से ही तो संसार में रगड़ा-झगड़ा है। अतः युवक, इस अभिमान रूपी शत्रु से सजग हो जाओ और इसे अपने पास ही न आने दो!

युवक, ये पांचों बुराइयाँ **देह-अभिमान** ही के कारण, अर्थात् स्वयं को "आत्मा" न मानकर "देह" मानने ही के परिणामस्वरूप प्रगट होती हैं। इसलिये देह-अभिमान ही सर्व प्रकार के पाप और सन्ताप का मूल है। देह-अभिमान की बजाए स्वयं को तथा अन्य सभी को "आत्मा" मानने से तथा "परमपिता परमात्मा की सन्तान" जानने से ही "विश्व-भ्रातृत्व" की भावना जागृत होती है। युवा, जागो, ऐसी भावना को जगाओ; अब इन विकारों को भगाओ और पवित्रता को अपनाओ!

युवा यह बुराई ही सुख और शान्ति की शत्रु है। अतः आपका आक्रोश किसी व्यक्ति के प्रति नहीं बल्कि इन मनोविकारों ही के प्रति होना चाहिये। आपके मन में विद्रोह सरकार, परिवार या आचार्य के प्रति होने की बजाय पापाचार ही के प्रति होना चाहिये। यही तुम्हारे शत्रु हैं। इन्हीं के कारण ही असत्य, अत्याचार, और अन्याय संसार में फैला हुआ है। अतः उठो, इस अनैतिकता को मिटा कर जन-मन में नैतिकता को जगा दो! अपवित्रता को भगाकर पवित्रता को बिठा दो! "काम" के स्थान पर "ब्रह्मचर्य" को, क्रोध की बजाये स्नेह, शान्ति और शीतलता को या धैर्य और मधुरता को, लोभ की जगह सन्तोष, उदारता, सहानुभूति और दान-वृत्ति को, मोह की जगह अनासक्ति, निष्पक्ष भाव या "वसुधैव कुटुम्बकं" की भावना को और अहंकार का नाम-निशान मिटाकर नम्रता, निमित्त भाव दूसरों के प्रति सम्मान भाव तथा भ्रातृ-भाव को सुदृढ़ करो! जागो, अब देर मत करो क्योंकि इन मनोविकारों की आग भड़क उठी है, संसार इनमें जल रहा है, हर मन में इनकी चिन्गारियां चमक रही हैं। आप ज्ञान की अमृत-वर्षा से, योग के आनन्द से, दिव्य गुणों की शीतलता और शान्ति से इनको मिटाओ और उन्हें भी सहयोगी बनाओ। लोगों को अब यह राहत देने का कार्य करो। अब इसी आध्यात्मिक समाज सेवा और स्व-उन्नति में प्रवृत्त होवो!

युवक, जरा सोचो तो सही कि रिश्वत, मिलावट और बनावट किस कारण है? ये लोभ वृत्ति ही के कारण से तो है? ये दहेज के बढ़ते हुए तकाज़े और नारी-दहन जैसी निर्दयतापूर्ण दास्तानें किस कारण से हैं? यह लोभ और लालच ही की मानसिक कालिमा के कारण ही तो हैं। यह बलवे, जातीय दंगे, तोड़फोड़ की वारदातें और हड़तालें क्रोध की धधकती हुई अग्नि का ही तो परिणाम हैं। अतः अब जागो, अपने मित्र को भी पहचानो और दुश्मन को भी जानो! निश्चय ही यह पांच विकार ही तुम्हारे शत्रु हैं और प्रेम, शान्ति तथा पवित्रता के सागर परमात्मा ही तुम्हारे परम मित्र हैं। मित्र से अपनी मित्रता निभाओ और विकारों रूपी महाशत्रुओं का बीज ही नाश कर दो। अन्य किसी प्रकार की तोड़-फोड करने की बजाए इन विकारों के पहाड़ों को तोड़ डालो क्योंकि यही तुम्हारी तथा संसार की सच्ची प्रगति में रुकावट हैं। अतः यदि हिम्मत है तो विकारी संस्कारों रूपी पत्थरों की तोड़-फोड़ करके दिखाओ!

युवक, दहेज की मांग करने वाले को तो 'मंगता' अथवा 'भिखारी' ही बनने की आदत पड़ जाती है। मांगने पर यदि दहेज मिले तो भी बुरा है और न मिले तो भी बुरा है। यदि मांगने पर भी किसी को मुँह-मांगा या मन चाहा दहेज नहीं मिलता तो वह उसे इज्ज़त का सवाल बनाकर और अधिक भड़क उठता है। यदि मांगने पर किसी को दहेज मिल जाता है तो वह और तकाज़े करने लगता है क्योंकि वह यह सोचता है कि अगर अधिक मांगता तो शायद उतना भी मिल जाता परन्तु पहले उतना नहीं मांगा तो चलो अब कुछ और मांग लेता हूँ। अतः उसमें मांगने की आदत पड़ जाती है। वह यह नहीं सोचता कि जब उसकी बहन या पुत्री के प्रसंग में कोई ऐसे तकाज़े करेगा तो उस समय उसे कैसा लगेगा और तब वह किस न्याय से उन्हें इन्कार करेगा। फिर यदि कोई यह सोच कर दहेज मांगता है कि संसार में बुराई तो पहले ही फैल चुकी है, और कि समय आने पर हमें भी तो किसी को दहेज देना पड़ेगा, तो गोया वह भी बुराई में अपने हाथ रंगने को तैयार है। युवक इस प्रकार कुप्रथा को अपनाना तो भेड़-चाल ही नहीं, यह तो पाप को बढ़ावा देना है!

युवक, यह कैसी विडम्बना है कि नर जिस से "जीवन-साथी" या "अर्धांगनी" का सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा करता है, उसे पैसे भी साथ लाने के लिए कहता है! संसार में दासी को भी धन देना पड़ता है, गाय-भैंस को खरीदना हो तो उसके लिये भी पैसे देने पड़ते हैं, दास-प्रथा के काल में गुलामों को भी पैसा दे कर ही खरीदा जाता था परन्तु आज का युवक उससे भी आगे निकल कर नारी को सजे-सजाये रूप में लाना चाहता है, उस से जीवन-भर सेवा की भी आशा करता है और साथ में कहता है कि वह अमुक-अमुक मूल्यवान सामान भी साथ ले कर आये! क्या यह न्याय है? युवक तुम जागो, इस मायाजाल से निकलो, रेत के ढेर पर अपने जीवन की अट्टालिका को खड़ा करने की व्यर्थ भावना को त्यागो! समाज में अब एक ऐसी जागृति लाओ कि मनुष्य अपने सम्बन्धों में सौदेबाज़ी छोड़ दे। वह घर की सदस्या बनने वाली सुशीला नारी की हत्या का महापाप करना बन्द कर दे। उस से धन की मांग कर उसे सताना समाप्त कर दे। वह उसे "दासी" या "भोग्या" समझने रूप घिनौने पाप की वृत्ति को त्याग दे। युवक, तुम धर्म के रक्षक बनो, पवित्रता के प्रहरी बनो, "स्वामी" कहला कर काम या लोभ का कुठाराघात तो न करो!

युवक, तुम्हारे विचार में यदि कोई अध्यापक ठीक नहीं है तो उसका अपमान मत करो। याद रखो कि अपमान से स्थिति सुधरती नहीं, बिगड़ती है। अपमानित व्यक्ति या तो बदला लेने का यत्न करता है या उसके दिल से आह निकलती है और अपमान करने वाला व्यक्ति अपने भीतर की बुराइयों की ओर आंख बन्द करके दूसरों की बुराइयों की सूची बनाने और उसके प्रति समाज में ज़हर फैलाने में लगा रहता है। अतः दूसरों के अपमान का कुत्सित कर्म छोड़ कर तुम स्वमान में स्थित होने का दृढ़ संकल्प करो! हाँ, बुराई का साथ मत दो, परन्तु एक बुराई को मिटाने के

लिये दूसरी बुराई को भी मत लाओ क्योंकि उससे तो बुराई बढ़ेगी ही,कम नहीं होगी। अतः अपमान रूपी भूल करने से बचो। युवा तुम स्वयं में भलाई की जागृति लाओ, बुराई को मत जगाओ! किसी का भला नहीं कर सकते तब बुरा तो मत करो।

युवक परीक्षा के समय यदि कोई विद्यार्थी किसी दूसरे की नकल करता है अथवा दूसरे को नकल करने देता है तो क्या निरीक्षक, परीक्षक अथवा आचार्य उसे न रोकें? क्या वह अपने कर्त्तव्य को छोड़कर, देखते हुए भी बुराई को होने दे? नकल करना बुराई ही तो है। जो नकल करेगा उसका अपना मन भी कचोटेगा। यदि वह किसी को कभी अपना भेद बतायेगा तो वह भेदी हो जायगा और उसका उसे सदा डर लगा रहेगा और उस दूसरे व्यक्ति पर उसका उल्टा प्रभाव भी पड़ेगा। यदि वह किसी को भी अपना भेद नहीं बतायेगा तो उसका यह अनाचार उसे स्वप्न में भी भयावह दृश्य के रूप में उम्र-भर कचोटेगा।अन्यश्च, ऐसे व्यक्ति को जीवन-भर दूसरों को कन्धों का सहारा लेने की आदत पड़ जायगी और वह अपमानित भी होता रहेगा। इस प्रकार एक परीक्षा की असफलता से बचने के लिये नकल करने से अपने जीवन को असफल बनाने का भयंकर परिणाम होगा।

फिर यदि कोई यह सोचता है कि एक बार तो नकल कर लेता हूँ, आगे के लिये नहीं करूंगा तो उसे याद रखना चाहिये कि जीवन में सभी बुरी आदतों का प्रारम्भ ऐसी ही मनोवृत्ति से होता है। पहले-पहल मनुष्य एक ही बार बुरा काम करता है और फिर उसके बाद बुराई की ओर झुकाव होते-होते वह आदत ही का रूप ले लेती है। अतः जो निरीक्षक नकल करने से रोकता है, उसे धमकाने या शत्रु मानने की बजाय नकल को ही अपना शत्रु समझो। युवा, जागो, इन सभी बुराइयों को त्यागो!

ज़रा सोचो तो सही कि बुराई आती कहां से है? बुराई बुरा देखने से, बुरा सुनने से और बुरा पढ़ने से मन में घर कर लेती है। इसीलिये ही महात्मा गांधी तीन बन्दरों की मूर्त्ति रखते थे जिससे यह प्रेरणा मिलती थी कि मनुष्य को न तो बुरा देखना चाहिये, न बुरा सुनना चाहिये और न बुरा बोलना ही चाहिये। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को बुरा संग और बुराई की ओर ले जाने वाले साहित्य तथा चलचित्रों को देखना छोड़ देना चाहिये। आज के सिनेमा,टी०वी०या वीडियो में ही मनुष्य कई बुरी बातें देखता और सुनता है तथा नावलों में ही कई बुरी बातें पढ़ता है और इनका प्रयोग करने वाले दोस्तों का ही अधिक संग करता है, इसलिये दिनोंदिन संसार में बुराई फैलती जा रही है। अतः यदि अपने मन में बुराई का अन्त करना चाहते हो तो हिंसक एवं वासना-प्रधान सिनेमा देखना और अश्लील नावल पढ़ना छोड़ो। ये मनुष्य को बुराई की गोद में सुलाने वाले हैं। युवा तुम जागो, इनको त्यागो!

परन्तु केवल उपरोक्त विधि से ही नहीं बल्कि बुराई तो मुख द्वार से भी प्रवेश होती है। जब मनुष्य शराब पीता है और उसके नशे में चूर हो जाता है तो वह अपनी सुधि-बुद्धि गँवा कर अनाप-शनाप बोलता है। वह अपना भी मान गँवाता है और दूसरों का भी अपमान करता तथा उनसे घृणित व्यवहार करता है। न केवल वह धन का अपव्यय करता है बल्कि अपने स्वास्थ्य को भी खो बैठता है।

इसी प्रकार, जब कोई धूम्रपान करता है तो न केवल वह विषैले धुएं से अपने फेफड़ों को खराब करता है और अपनी श्वास-प्रणाली को एक कारखाने की चिमनी की तरह प्रदूषित कर देता है बल्कि वह अपनी मेहनत की कमाई को भी फूँक देता है। धूम्रपान से दर्जन से भी अधिक विष मनुष्य के भीतर जाकर उसे अस्वस्थता की ओर धकेल देते हैं। यहाँ तक कि मनुष्य को कैंसर तक का भी रोग हो जाता है। यह जानते हुए भी धूम्रपान करना तो अपने विवेक का गला घोंटना है। इतना ही नहीं बल्कि यह तो दूसरों के स्वास्थ्य को भी आघात पहुँचाना है क्योंकि सिग्रेट आदि के धुएँ से तो पास में बैठे उस व्यक्ति को, जो कि सिग्रेट न पीता हो, भी कैंसर का रोग होने की सम्भावना होती है। फिर, आज जबकि संसार में करोड़ों लोग इतने निर्धन हैं कि उन्हें दिन में दो बार किसी का बचा हुआ भोजन भी नसीब नहीं होता है,तो पैसे को धुएँ में नष्ट करना एक प्रकार की निर्दयता ही तो है। अतः युवक इस स्वास्थ्य-नाशक तथा समाज-घातक विष से जग को बचाओ।

धूम्रपान से भी अधिक दयनीय स्थिति उस व्यक्ति की होती है जो कि द्रव्य पान करता है। किसी दोस्त या अपरिचित व्यक्ति के कहने से एक बार जब कोई व्यक्ति द्रव्य पान कर लेता है तो उसका प्रभाव उसे बार-बार उसका प्रयोग करने के लिये उसके मन में उकसाहट पैदा करता है। गोया वह नशीला द्रव्य मनुष्य के मन को अपना गुलाम बना लेता है। उकसाहट महसूस होने के समय यदि वह प्राप्त नहीं होता तब भी मनुष्य को बहुत कष्ट अनुभव होता है और उसे खरीदने के लिये मनुष्य का जितना धन लगता है, उससे भी मनुष्य को बहुत दुःख होता है और, सब से बड़ी बात यह है कि यह द्रव्य मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को इतना झकझोर देते तथा उसे इतना निकम्मा कर देते हैं कि जिसका वर्णन कठिन है। अतः युवक, कैसी भी मायूसी की परिस्थिति क्यों न आये, कितने भी दोस्त उसके लिए आग्रह क्यों न करें, नशीले द्रव्य का भूलकर भी सेवन न करना।

इन सभी बातों को देखते हुए भी यदि युवक मद्यपान, धूम्रपान या द्रव्यपान करता है तो गोया वह अपने विवेक को मारकर ही ऐसा करता है। वह दूसरों द्वारा यह सुनकर कि "इसमें बहुत मज़ा आता है या कि इनके सेवन से उसे कुछ समय के लिये अपनी दुःखद परिस्थितियाँ, असफलताएं और मायूसियाँ भूल जायेंगी और कि मित्र होने के नाते भी उसे उनके साथ इनका प्रयोग करना चाहिये, वह उनके कुसंग के परिणामस्वरूप ही पहले पहल इनका शिकार बन जाता है। अतः युवक, यह सोच लो कि जो तुम्हें ऐसे पदार्थों के प्रयोग के लिए आमन्त्रित करते, सुझाव देते या तुम पर दबाव डालते हैं वे तुम्हारे मित्र नहीं हैं क्योंकि वह तुम्हें अन्धेरी गलियों में, भूल-भुलैयों में ले जा कर गुमराह कर रहे हैं। अतः उन नशीले पदार्थों के साथ उनकी दोस्ती भी छोड़ दो।

मनुष्य को सोचना चाहिये कि इन सभी प्रकार के नशों के सेवन से तो अतुल हानि है और कि सहज राजयोग द्वारा मनुष्य को जो आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है तथा ईश्वरानुभूति द्वारा मनुष्य को जो नारायणी नशा उपलब्ध होता है, उनके सामने ये सभी नशे नहीं टिक पाते। उनसे मनुष्य का ऐसा उमंग-उत्साह बना रहता है कि वह सभी विषम परिस्थितियों को पार कर पाता है और मायूसी कभी भी उसके पल्ले नहीं पड़ती तथा यदि ये व्यसन उसे पहले से ही सता रहे हों तो वह उनसे मुक्त हो जाता है। अतः युवा, जागो और अन्य युवाजनों को भी जगाओ ताकि देश में इन व्यसनों के कारण युवा वर्ग में यह जो नई बुराई आ गई है और उन्हें अपनी लपेट में लाकर निकम्मा, रोगी तथा निर्धन बना रही है, उससे वे छूट सकें!

मांसाहार से भी मनुष्य में कई बुराइयां आती हैं। अपने स्वाद के लिये या उदरपूर्ति के लिये, अर्थात् स्वार्थ के लिये वह दूसरों का खून किये जाने के निमित्त बनते हैं। वह "जीयो और जीने दो" के स्वर्णिम सिद्धान्त को एक ओर रखकर दूसरों के जीने के अधिकार को छीनता है और संसार में हिंसा-प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देता है। न केवल वह पेट को कब्रिस्तान बना कर, मुर्दों को पकाकर उसमें दफ़नाता है बल्कि वह संसार के अच्छे-अच्छे पदार्थों को छोड़कर तामसिक भोजन का सेवन करता है। मन्दिर-सम शरीर में मांस डालकर वह भ्रष्ट भोजन करने की प्रथा का पक्षधर बनता है और कई प्रकार की शारीरिक हानियों को भी न्योता देता है। युवक, तुम उस प्रकार की निकृष्ट सामग्री को हाथ भी न लगाओ और संसार के सिर से मांसाहार का अभिशाप मिटाओ!

ऐसी ही एक आदत फ़ैशन की भी है। अपने व्यक्तित्व को निखारने के लिये, उसे लोक-पसन्द बनाने के लिये, सुन्दर दिखाई देने के लिये या आकर्षक मासूस कराने के लिये कितने ही युवक-युवतियाँ बनाव-शृंगार करते हैं। वे खर्चीले शृंगार साधन या मेक-अप के साधनों का प्रयोग करते हैं, कई प्रकार के बहुत कीमती कपड़ों और वस्तुओं आदि का प्रयोग करते हैं और भांति-भांति के रासायनिक पदार्थ काम में लाते हैं। उन रासायनिक पदार्थों का बाद में चेहरे पर जो बुरा प्रभाव पड़ता है, उससे तो वे अनभिज्ञ होते हैं। वे तो सिनेमा में देखकर या उन पदार्थों के इश्तिहार पढ़कर उनका प्रयोग शुरू कर देते हैं और फिर देखते हैं कि जिस दिन वे उनका प्रयोग नहीं करते, उस दिन उनका चेहरा बदसूरत लगता है। इस प्रकार, एक्टर और एक्ट्रेसिस की नकल कर के उनके समान बनावटी सौंदर्य का स्वांग रचना तो गोया कृत्रिमता को अपनाना और दूसरों को बनावट द्वारा धोखे में डालना रूप बुरी आदत अपनाना है। अपनी प्राकृतिक सुन्दरता को छोड़ कर बहुत पैसे खर्च करके प्रतिदिन अपने मुख-मण्डल को बिगाड़ना तो गोया प्रकृति को पीछे छोड़ कर स्वयं को उससे अधिक कलाकार मानना है। अन्यश्च, बहुत खर्चीली वेश-भूषा आदि का प्रयोग करने की आदत डालकर अपने ऊपर ही खर्च का बोझ डालना और फिर उस खर्च को कर सकने की क्षमता प्राप्त करने के लिये रिश्वत लेना, गलत तरीके से पैसा कमाना तथा इन सब के लिये अन्तर्मन की आवाज़ को दबाना, दूसरों की दृष्टि में अपनी इज्ज़त गंवाना तथा उन द्वारा "भ्रष्टाचारी" कहलाये जाने के लिये भी तैयार होना है। ज़रा सोचो तो सही कि दूसरों को रुलाकर पैसा घर में लाना और फिर उसे इस तरह गंवाने में फायदा क्या है? अतः युवक, जागो, दूसरों की देखादेखी तुम कृत्रिमता को मत अपनाओ, अपनी सामर्थ्य से अधिक खर्च मत करो और अपने शृंगार के लिये धन को गलत तरीके से कमाने की बुराई मत मोल लो! जन-जन की अन्तरात्मा को जगाते हुए उन्हें बताओ कि सादगी और स्वच्छता ही स्वास्थ्य का आधार है और स्वास्थ्य तथा सद्गुण ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ शृंगार हैं। चेहरे पर मुस्कान सर्वश्रेष्ठ पाउडर, आंखों में मासूमियत सब से अधिक आकर्षण हैं और शान्ति, पवित्रता, सन्तोष, नम्रता तथा सरलता ही सब से श्रेष्ठ सुगंधियां है। इसका प्रयोग करने वाला न तो स्वयं देह-अभिमानी बनकर गिरावट की ओर जाता है, न वह दूसरों को अपनी प्रकृति की ओर आकर्षित करके उन्हें गिराने के निमित्त बनता है। अतः ऐसा ही शृंगार करो तो कल्याण के भागी बनोगे।

इसी प्रकार यदि कोई युवती भी बनाव-शृंगार करके, भड़कीले कपड़े पहन कर या शरीर को ठीक रीति से न ढकते हुए मचल-मटक कर बात करती है जिससे कि पुरुषों, विशेष रीति से युवकों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता है और उसके प्रति वे खिंचावट महसूस करते

हैं तो वह भी समाज के पतन के निमित्त बनती हैं। यहां कोई घूंघट करने या बुर्का पहनने के लिये नहीं कहा जा रहा है परन्तु कृत्रिम साधनों का प्रयोग करके या एवं कम ढकने वाले वस्त्रों का प्रयोग करने की आदत के विषय में कहा जा रहा है। हो सकता है ऐसा करने वाली युवती के अपने मन में कोई भी बुरे विचार न हों परन्तु उनकी यदि ऐसी जीवन-पद्धति से दूसरों के मन में अशुभ, अश्लील या तमोगुणी विचार आते हैं, तब लोक-हित को सामने रखते हुए भी इसका त्याग करना चाहिये। ऐसा कर्म करने से क्या लाभ जिससे कि कोई उसके ज़ेवरों को छीनने की बात सोचे, उसके अपहरण की गंदी बात सोचे या अन्य कोई नीच विचार अपने मन में लाये? अतः यद्यपि हम ने इस पुस्तिका में जहाँ-कहीं भी "युवक" शब्द का प्रयोग किया है, वहां-वहां वह शब्द "युवक" और "युवती" दोनों ही के लिये है, तो भी हम यहां युवती के लिये यह बात अलग से लिखकर विशेष तौर पर उसे सम्बोधित करके कहना चाहते हैं कि युवती! तू तो स्वयं ही पवित्रता का स्वरूप है, तेरा नाम ही "सादगी है, तू तो संसार में सादगी की चेतन मूर्ति बन, पवित्रता की सजीव प्रतिमा बन! तेरा यही रूप जन-जन के मन में देवी के दर्शन के तुल्य होता है।

परन्तु प्रश्न उठता है कि व्यक्तित्व में निखार कैसे आये? दूसरों पर हमारा प्रभाव कैसे पड़े? हम अन्य लोगों के मन को कैसे जीत लें? हम मद्यपान, धूम्रपान, द्रव्यपान, आदि व्यसनों से कैसे छूटें? हम जीवन में असफलताओं और मायूसियों का सामना कैसे करें? हम अनेक प्रकार की चिन्ताओं तथा आकर्षणों के बीच रहते हुए मन को समतल मन कैसे बनाये रखें और एकाग्रता को कैसे कायम रखें? हम कामोत्तेजक परिस्थितियों के बीच युवावस्था में अपनी शक्ति को कैसे सुरक्षित रखें? संसार में अन्याय को देखते हुए भी हम क्रोध और आक्रोश के ज्वार-भाटे का सामना कैसे करें? विशेष बात यह कि हम सत्य का कैसे साक्षात्कार करें? हम आत्मानुभूति और परमात्मानुभूति का सौभाग्य कैसे प्राप्त करें? आज संसार में अनेकानेक पंथ और वाद हैं, उन सभी के होते हुए हम कैसे जानें कि किधर जायें? हम अपने प्रश्नों का तर्क-संगत हल कैसे पायें तथा वैज्ञानिक रीति से उनकी व्याख्या कहाँ से प्राप्त करें? हम अपने संवेगों का नियन्त्रण कैसे प्राप्त करें और जीवन में सफलता तक कैसे पहुँचे?

युवा वर्ग के बहनों और भाइयो, उसके लिये सहज ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग तथा दिव्य गुणों की धारणा ही एक सार्वभौम-जीवन दर्शन है जो इन सभी प्रश्नों का एक-साथ समाधान करता है! दो-चार दिन आजमा कर देखो। फिर उसके बाद तुम स्वतंत्र हो। युवा, जागो और जागकर इसे प्राप्त करो वर्ना वक्त हाथ से निकलता जा रहा है!

"अबके बरस..."

(बी.के. राजकुमारी, मजलिस पार्क, देहली)

हर घर की सुख शान्ति की राखी करने को
मानवता की झोली में खुशियां धरने को
पिला के पियूष हर आत्मा की वृत्ति को, दृष्टि को
खुद शिव बांध रहे सुख की राखी सृष्टि को।
स्वतंत्रता मनाने को सर्व बन्धनों से
मुक्त कराने को विकारी क्रन्दनों से
अब के बरस मेरे भैया.....।
आ! इस अनुपम बन्धन को बंधवाएं
सुखमय संसार सृजन में सहयोगी बन जाएं
बात नहीं धागों की, वो तो बंध रहे हर ओर
मन के मणके में पिरो ले ईश्वरीय याद की डोर
हर हृदय मन्दिर में सत्य प्रदीप प्रज्ज्वलित करने को
विजयी तिलक से सुशोभित हर मस्तक हो।
मुस्कानों के आँचल में दिव्यता भरने को
हटा के धरा से घटाटोप रजनी को
खुद शिव बाँध रहे राखी 'प्रकाश' की सृष्टि को।
हिलमिल झुल आ! दिल खुश मिठाई खाएं
आ! इस अनुपम बन्धन को बंधवाएं
सुखमय संसार सृजन में सहयोगी बन जाएं।

गीत

जागो, युवा जागो !

जलते हुए अंगारों में तुम्हें शीतल जल बरसाना है
जागो, युवा जागो.....
जरा खोलो अपनी आँखें तुम्हें सारे जग को जगाना है
देख जरा क्या कह रहा है, धरती की आँख का पानी
आह भरे गीत गाती है, शिव के बच्चों की कहानी
आँसू भरे इन आँखों में, तुम्हें खुशियां भरके जाना है
जलते हुए अंगारों में.....

उलझनों में उलझता मानव, उसको देना आत्म-ज्ञान
पीड़ित और सिसकता हर मन, तू कर उसको करूणा दान
मुरझाये चेहरों पे, तुम्हें मुस्कराहट लाना है
जलते हुए अंगारों में.....

छूट गया है दामन इनसे, सुखों भरे संसार का
खो गया नज़रों से जिनके, सागर वो कहीं प्यार का
उस सागर का ज्ञान-अमृत जन-जन को पिलाना है
जलते हुए अंगारों में.....

क्या महाभारत काल आ गया?

धर्म ग्लानि के समय ईश्वर का अवतरण बताया जाता है। परमात्मा परकाया प्रवेश करके अति गुप्त तरीके से आत्माओं को सतोप्रधान बनाने का कार्य करते हैं। परमात्मा जो कि निराकार है, किसी शरीर का आधार लेते हैं। परमात्मा ब्रह्मा के माध्यम से सृष्टि की रचना, शंकर के माध्यम से पुरानी सृष्टि का विनाश कराते हैं, फिर नयी दुनिया की लक्ष्मी-नारायण (विष्णु रूप) से पालना कराते हैं। आइये, विवेचना करें कि क्या यह सृष्टि का अंतिम समय है?

कलियुग की आयु

कलियुग की आयु ४३२००० वर्ष मानी गयी जिसके मात्र ५००० वर्ष बीते बताये जाते हैं। वायुपुराण में इसकी आयु १००० वर्ष बतायी गयी। फिर २०० वर्ष सन्धि काल के माने गये। प्रश्न उठता है कि शास्त्रों में वर्णित भिन्न-भिन्न आयु क्यों? वास्तव में वर्ष की परिभाषा भी शास्त्रों में नहीं है। अभी कुछ सौ वर्षों से पता चला कि पृथ्वी सूर्य का चक्र लगाती है। इसके पूरे एक चक्र में लगे समय को वर्ष माना गया। शास्त्रों में तो बताया गया कि सूर्य रथ पर चलता है, पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी है। तो फिर वर्ष परिभाषित कहाँ हुआ? हाँ, विश्व की परिस्थिति ऐसी हो गई है कि अब परिवर्तन अवश्यम्भावी है।

जनसंख्या विस्फोट

तथ्यों के आधार पर विद्वानों ने माना कि सन् १६०० तक विश्व की आबादी ५० करोड़ थी, १९६१ में ३०५ करोड़ थी अब ५०० करोड़ है। इस शताब्दी के अन्त तक ८०० करोड़ हो जाने की सम्भावना है। वैज्ञानिकों के अनुसार एक निश्चित संख्या तक जब आबादी बढ़ जाती है तो विनाश जनसंख्या को पूर्व बिन्दु पर ला देता है। पृथ्वी तो अनादि है, तो अवश्य ही जनसंख्या में वृद्धि अनेकों बार हुई होगी। लगभग ३० वर्षों में आबादी दुगनी हो जाती है, तो सौ वर्ष में ८ गुनी हो जायेगी। इस हिसाब से कलियुग के शेष ४,२७,००० वर्षों में आबादी लगभग १,७०,८०,००० करोड़ हो जायेगी जो कि असम्भव है।

वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है। आक्सीजन व कार्बनडाईआक्साईड चक्र बिगड़ गया है। कार्बनडाईआक्साईड की मात्रा २९७ प्रति १० लाख पहुँच चुकी है। जो कि शताब्दी के अन्त तक ७०० प्रति १० लाख तक हो जायेगी। जिससे विश्व का ताप तेजी से बढ़ेगा। वैज्ञानिकों के अनुसार शताब्दी के अन्त तक विश्व का ताप कई डिग्री बढ़ जायेगा। ध्रुवों का ताप भूमध्य रेखा के ताप का लगभग ७ गुणा बढ़ता है। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण बर्फ पिंघल सकती है। वैज्ञानिकों ने आधुनिक अन्वेषणक आधार पर बताया है, वायु प्रदूषण के कारण वायुमंडल के ऊपरी भाग में स्थित ओजोन की पर्त में छेद हो रहे हैं जिससे सूर्य से आने वाली हानिकारक किरणें (परावैगनी किरणें) ओजोन द्वारा पूर्णत: अवशोषित नहीं हो रही हैं। ऐसे ही प्रदूषण बढ़ता रहा तो वैज्ञानिक कहते हैं ओजोन की पर्त फट जायेगी जिससे कैंसर, एड्स व अन्य प्राण-घातक बीमारियों का महाविनाशक दौर चलेगा।

कुछ समय पूर्व दिल्ली में मनुष्यों के दिल के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि मनुष्य के हृदयों का आकार बढ़ रहा है।

अन्य प्रदूषण

खाने पीने की वस्तुओं में प्वायजनूस (जहर) का प्रतिशत तेजी से बढ़ रहा है। ध्वनि प्रदूषण, चारित्रिक प्रदूषण, सामाजिक, आर्थिक सभी दिशाओं में गिरावट एक चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। वह समय दूर नहीं कि हमारा शरीर प्रदूषण का सामना नहीं कर पायेगा। मनुष्य सदैव प्रकृति को छेड़ता आया है। अब प्रकृति इस दशा में पहुँच चुकी है कि वह प्राणियों को काल के मुँह में ढकेलने के लिए तैयार खड़ी है।

विनाशकारी साधन

महाभारत में वर्णित मूसल, अमोघ शस्त्र, अग्नि बाण, आदि एटम बम्ब, अणु बम्ब, लेसर किरणें, स्टार वार, रासायनिक युद्ध सामग्री, रोगाणु प्रसारक शस्त्र आदि के रूप में विद्यमान हैं। महाभारत में वर्णन जनश्रुति के आधार पर किया गया है। यह ग्रन्थ वास्तव में युद्ध के लगभग २५०० वर्ष बाद रचा गया जिससे यथार्थ वर्णन नहीं हो पाया। जबकि आधुनिक अस्त्र-शस्त्र तो पिछले ५० वर्षों के अन्तराल से हैं।

वासना की अति प्रधानता

वासना में मनुष्य से अति कामी पशु पक्षी भी पिछड़ गये हैं। आज तो वासना, अश्लीलता मनोरंजन का प्रमुख साधन बन कर रह गयी है। पत्र-पत्रिकाएं, उपन्यास, सिनेमा यहाँ तक मनुष्य की बात चीत में भी वासना की प्रधानता रहती है।

ऐतिहासिक साक्ष्य

पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई के आधार से प्राप्त साक्ष्यों से प्रमाणित हो चुका है कि आज से लगभग ५,००० वर्ष पूर्व

अत्याधिक जल प्लावन हुआ जिससे सम्पूर्ण विनाश हो गया होगा। कहते हैं इतिहास पुनरावृत्त होता है। पृथ्वी तो अनादि है। तो अवश्य ही सृष्टि परिवर्तन होता रहा होगा। ज्ञात इतिहास तो २००० वर्ष से अधिक नहीं है। यह शत प्रतिशत सत्य है कि ५००० वर्षों बाद सृष्टि परिवर्तित हो जाया करती है।

कलुषित वृत्तियाँ

आज तो भाई-भाई की, पुत्र पिता की, पिता पुत्र की वासना, लोभ-लालच के वशीभूत होकर हत्या तक कर देते हैं। कागज के चन्द टुकड़ों के पीछे आज क्या नहीं होता? महाभारत में वर्णन मिलता है कि दुर्योधन ने अपने भाइयों का हिस्सा हड़पने का कुचक्र रचा। द्रोणाचार्य जैसे गुरु, भीष्म जैसे तपस्वी ने अर्थ लोभ वश हो दुर्योधन का साथ दिया। युधिष्ठर जैसे लोग भी जुआ खेलने लगे। आज तो अर्थ के कारण सारी मानवता को ही दफना दिया गया है। आज सभी दिशाओं में कलुषित विचार ही दिखायी देते हैं। यहाँ तक मनुष्य अपने इष्ट देव की पूजा आदि करता है तो भी अर्थ लाभ या सन्तान लाभ ही चाहता है।

कौरव पाण्डव व यादव

आज धरा के मंच पर कौरव, पाण्डव व यादव तीनों एक साथ अपना पार्ट बजा रहे हैं। यादवों के बारे में गायन है कि वह स्वेच्छाचारी थे। मदिरा खूब पीते थे। अहंकारी एवं शक्तिशाली थे। आज यूरोप तथा अन्य पाश्चात्य देश वालों पर यह सारी बातें खरी उतरती हैं। वे एक दूसरे को नष्ट करने की दिशा में विनाशकारी साधन ढूंढने में लगे ही नहीं,ढूँढ लिये हैं। कौरव यानी धर्मानुसार न आचरण करने वाले लोग कौरव हैं। यह लोग अहंकारी थे। शक्ति बल के कारण (शारीरिक बल) धार्मिक मान्यताओं के अनुसार आचरण नहीं करते थे। अपने को आत्मा नहीं अनुभव करते,ईश्वरीय शक्ति को नहीं मानते।

आज दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो अपने को आत्मा अनुभव करते हैं, आत्मा समझ सभी लोगों को आत्मिक नाते भाई-भाई समझते हैं। उनकी दृष्टि में सभी धर्मों के लोग एक परमात्मा की सन्तान हैं, अतः सभी भाई-भाई हैंयहाँ तक वे स्त्री पुरुष में भेद नहीं अनुभव करते क्योंकि आत्मिक दृष्टि से आत्मा न नर है और न नारी। उनकी दृष्टि में ऊँच-नीच, सुन्दर-असुन्दर सभी समान हैं। वे काम, क्रोध मोह, लोभ, अहंकार, घृणा,द्वेष, आलस्य को जीत चुके हैं या जीतने के लिए पुरुषार्थ कर रहे हैं जिसका परिणाम होगा विश्व में चिरस्थाई शान्ति जो हजारों साल कायम रहेगी। वे अपनी आत्मिक स्थिति में रहने का अभ्यास परम पिता परमात्मा की याद की सहायता से कर रहे हैं। महाविनाश के सभी कारण व साधन उपलब्ध हैं। एक बार एलबर्ट आइंस्टीन से पूछा गया कि तृतीय विश्व के बाद क्या होगा। उसका जवाब था उसके बाद चतुर्थ विश्व युद्ध कभी न होगा।

हम क्या करें?

गीता का उद्देश्य है कि मनुष्य को आत्मा (क्षेत्रज्ञ),शरीर (क्षेत्र) का ज्ञान देकर परमात्मा के साथ योग युक्त रहें। जिससे आत्मा अपने आदि स्वरूप में (पवित्र) स्थित हो सके। गीता में काम को महा शत्रु बताया गया। तो समझने की बात है अर्जुन की लड़ाई काम, क्रोध,मोह, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आलस्य से थी,न कि स्थूल रूप में। परमात्मा कहते हैं कि अर्जुन, तुम मुझे श्वासों-श्वांस याद कर। भगवान् ने कहा-अर्जुन, मुझे वही प्रिय है जो संकल्प (मन में) मात्र में भी हिंसा नहीं लाता।तो समझने की बात है कि अपने परमप्रिय सखा से भगवान ने कैसे स्थूल हिंसा करवायी थी? स्पष्ट है कि युद्ध हिंसात्मक नहीं था। गुरु, दादा, बाबा, मामा, भाई आदि को मारने का तात्पर्य है कि उन्हें बुद्धि से भूल जाओ।किसी सम्बन्ध, वस्तु यहाँ तक शरीर को बुद्धि द्वारा भूलना ही नष्टोमोहा बनना है।

जब मनुष्य अपने को आत्मा मानता है तो आत्मिक नाते सभी भाई-भाई हो जाते हैं। तब स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच की बात नहीं उठती। काम-क्रोध, मोह आदि विकार ही नरक का द्वार हैं। मनुष्य सतोगुणी से तमोगुणी इन्हीं के कारण बना है। जब तक मनुष्यात्माएँ अपने को इन विकारों से नहीं छुड़ातीं, सुख-शान्ति की एक किरण भी नसीब नहीं हो सकती। ईश्वर के अवतरण का उद्देश्य यही होता है कि मनुष्य-आत्माओं को तमोप्रधान से सतोप्रधान बनाना।किसी ज्ञान की सार्थकता तभी है जब उसका व्यावहारिक स्वरूप हो। आज हजारों लोगों को गीता कंठस्थ है पर उनका व्यावहारिक स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता। यहाँ तक लाखों लोगों की भीड़ को गीता ज्ञान सुनाने वाले अपने भाषण के लिए हजारों रुपये लेते ही नहीं बल्कि मोल-भाव करते देखे जाते हैं। एक विद्वान मनुष्य ने अपने भाषण में लोभ करने वालों को कुत्ते की संज्ञा दे दी। पर वह स्वयं हजारों रुपयों का मोल भाव करके ही मंच पर भाषण दे रहा था। क्या उसने गीता-ज्ञान को धारण किया? यह तथ्य है कि जब तक स्वयं को कोई गुण धारण न हो, दूसरे को धारण नहीं करवा सकते। यही नहीं गीता आदि के मर्मज्ञ मान-सम्मान के आकांक्षी देखे जाते हैं। जबकि गीता का उद्देश्य ही है समभाव ही में स्थिति करना जिसका अर्थ है निन्दा, स्तुति, लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश आदि का असर अंश मात्र न हो।

लोग कहते सुने जाते हैं कि कलियुग में धर्म-आचरण आदि कैसे हो सकता है। यह भी निश्चित है कि कलियुग के

बाद ही सतयुग आयेगा। तो कौनसी आत्माएं (सतयुग) में आयेगी ? क्या सतयुगी आत्माएं कहीं और हैं? नहीं। कलियुगी आत्माएं ही प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा पवित्र की जाती हैं। उन्हें व्यावहारिक गीता ज्ञान देकर आत्म स्थिति में स्थित किया जाता है। मनुष्य को आत्मस्वरूप में स्थित करने का कार्य प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय में चल रहा है जिसकी शाखाएं विश्व के लगभग साठ से अधिक देशों में है। यहाँ राजयोग की निःशुल्क शिक्षा दी जाती है जिसका लाभ विश्व के लाखों लोग उठा रहे हैं। यहाँ केवल बुराइयों का दान लिया जाता है। चरित्र परिवर्तन के कारण लोग यहाँ के कार्य को आश्चर्य से देखते हैं। वे समझ नहीं पाते कि मनुष्य में यह कैसे परिवर्तन हो जाता है।

आज के वातावरण में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना बहुत ही कठिन है। परन्तु इस संस्था के लाखों छात्र परमपिता परमात्मा से शक्ति लेकर घर-गृहस्थ में रहते हुए भी सम्पूर्ण पवित्र रहने का पुरुषार्थ कर रहे हैं। यही नहीं अति आधुनिक वातावरण में रहने वाले पाश्चात्य देशों के हजारो लोग सभी ईश्वरीय मर्यादाओं का पालन करते हुए पूर्ण पवित्र रहने का पुरुषार्थ कर रहे हैं। मैं अभी कुछ महीनों से इस संस्था का विद्यार्थी बना हूँ। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि जीवन में सतोगुणी परिवर्तन यहाँ आने लगता है। जिससे ईश्वरीय पढ़ाई का साक्ष्य मिलता है।

परमात्मा शिव द्वारा ब्रह्मा के मुख से उच्चारित ज्ञान द्वारा लाखों आत्माएं प्रजापिता ब्रह्मा मुख वंशावली बन चुकी हैं जो विश्व परिवर्तन व स्व-परिवर्तन का पुरुषार्थ कर रहे हैं।

२७, २८, २९ सितम्बर १९८७ को पाण्डव भवन, माउन्ट आबू, राजस्थान पर 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार' के अन्तर्गत एक सन्त-महात्माओं का सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें महामंडलेश्वर व अन्य गणमान्य महात्मा सम्मिलित हुए। सभी ने एक मत से स्वीकार किया कि प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षायें भारतीय आध्यात्म, संस्कृति और दर्शन से सम्मत हैं तथा विवेकानुकूल हैं। सभी धर्माचार्यों ने कहा कि अब उन्होंने इस संस्था के कार्य को निकटता से देखा और जाना है। इस संस्था के विषय में जनसाधारण को या किन्हीं धार्मिक संस्थाओं अथवा धर्माचार्यों को भ्रांतियाँ हैं,वे उनका निराकरण अपने अनुभवों से करेंगे।

इस अवसर पर अनेक महात्माओं ने कहा कि यहाँ सतोप्रधानता दृष्टि-गोचर होती है जो अन्यत्र कहीं नहीं है।तो अवश्य ही सतयुग आयेगा। जीवन में इतना परिवर्तन है, अवश्य ही परम पिता परमात्मा के द्वारा यह कार्य किया जा रहा है। अन्त में सभी से यह अपील करूँगा कि सुखमय स्वर्णिम युग तो आयेगा.यह पुरानी दुनिया अवश्य ही समाप्त होगी।तो क्यों न राजयोग सीखकर स्वर्णिम युग में जाने के लिए आत्मा में स्वर्णिम संस्कार भर लें।

ब्र० कु० भगवती प्रसाद, अलीगंज, लखनऊ

गीत

"रक्षाबन्धन अनोखा कंगन"

सब त्योहारों में भैया, रक्षाबन्धन विशेष है।
माया से रक्षा करना, रक्षाबन्धन का सन्देश है।
सब त्योहारों में भैया.....।

पांच विकारों से मुक्ति दिलाये रक्षाबन्धन
कहलाती ये बन्धन,पर बनाती निर्बन्धन
भाई बहन की रक्षा करे जो ये है अनोखा कंगन
पहनो भैया कंगन ये, जीवन बन जाये मधुबन

भाई बहन का प्यार है प्यारा, प्यारा अपना देश है
देश की रक्षा करना रक्षाबन्धन का सन्देश है।
सब त्योहारों में भैया.....।

दान विकारों का मेरे भैया, परमपिता को देना
बीते खुशी में सारा जीवन, मुस्कराते रहना
रक्षाबन्धन पवित्रता और मर्यादा का है गहना
बान्ध के इस बन्धन को, भारत मां की रक्षा करना।

इस प्यारे बन्धन का भैया, एक यही उद्देश्य है
माया से रक्षा करना रक्षा बन्धन का संदेश है।
सब त्योहारों में भैया.....।

चारों तरफ अशान्ति,दुःख,हिंसा के बादल छाये
मानव सच्चा प्यार फिर ना जाने कहां भुलाये
रक्षा बन्धन प्रेम एकता से जीना सिखलाये
जाति भाषा भेद धर्म के झगड़े ये मिटाये

पवित्र बन जग को बनाओ, शिव पिता का ये आदेश है
माया से रक्षा करना रक्षाबन्धन का सन्देश है।
सब त्योहारों में भैया.....।

भारत तो स्वतन्त्र हुआ आजादी के नारों से
स्वतन्त्रता सच्ची होगी, जब होगी पांच विकारों से
छोड़ो बुराई और हिंसा राखी ये कहती है
मानव की सेवा करना ही सबसे बड़ी भक्ति है।

राखी का त्योहार अनोखा देता ये उपदेश है
माया से रक्षा करना रक्षाबन्धन का सन्देश है।
सब त्योहारों में भैया.....।

—बी.के. महेन्द्र, माऊण्ट आबू

विशाखापटनम—तनुकु में राजयोग शिक्षण केन्द्र के उद्घाटन समारोह में ब्र० कु० हेमा बहन प्रवचन करते हुए।

झालावाड़—उप जिला विकास अधिकारी श्री जे० टी० शर्मा जी तथा अन्य को चित्रों के माध्यम से परमात्मा का परिचय देते हुए ब्र० कु० मीना बहन ।

पिलखुवा में आयोजित 'सर्व के सहयोग से सुखमय संसार कार्यक्रम समारोह में प्रवचन करती हुई ब्र० कु० चक्रधारी बहन

भावनगर मेडीकल एशोसिएशन में आयोजित एक कार्यक्रम में मंच पर उपस्थित हैं डा० धानक, डा० कोकिला शाह, डा० तुषार गाँधी तथा अन्य।

'ओ० के०' 'टा-टा'

ब्र० कु० मुरारीलाल त्यागी, त्रिनगर, दिल्ली

जब से बाबा ने अव्यक्त वाणी में 'ओ' (O) अक्षर का अर्थ बताया है कि 'ओ' (O) को परमपिता परमात्मा ज्योति बिन्दु शिव का चिह्न मानो और 'के' (K) शब्द का अर्थ किंगडम अर्थात् स्वर्ग की बादशाही, इस अर्थ के स्पष्टीकरण के बाद से बाबा को याद करना और भी सरल हो गया है । परमपिता परमात्मा को याद करने की यह भी एक विधि है ।

जब कभी मैं गाड़ी चला रहा होता हूँ और किसी ट्रक या बस के पीछे होता हूँ तो प्रायः सभी टैम्पो या स्कूटर के पीछे यह लिखा मिलता है—'ओ० के०', 'टा-टा' (O. K., TA-TA) । इन अक्षरों को पढ़ते ही मन कहीं भटक रहा होता है तो ठिकाने पर आ जाता है यानी परमपिता की याद में टिक जाता है, मीठे बाबा की याद में खो जाता है । जब विचित्र बाबा की याद आती है तो फिर उसका अवतरण, कर्त्तव्य और सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त का ज्ञान बुद्धि में घूम जाता है—साकार बाबा, शिव की रचना—ब्रह्मा, ब्रह्मा की रचना—ब्राह्मण (पांडव और शक्तियां) ।

जब 'के' (K) अक्षर पर ध्यान जाता है तो सतयुग की बादशाही यानी बादशाह (King) बनने का आनन्द आने लगता है । सतयुग का प्रथम राजकुमार कृष्ण आँखों के सामने नाचने लगता है, सखाओं के मध्य उसके चरित्र और फिर श्रीलक्ष्मी-नारायण की राजधानी, २१ जन्मों की बादशाही, पवित्रता, सुख, शान्ति का वर्सा । त्रिनेत्री बनने की बात भी इन्हीं दो अक्षरों में समाई होती है । तीनों कालों की कहानी की पुनः स्मृति हो आती है । उत्थान और पतन को हम भली प्रकार समझने लगते हैं । देखिए, अक्षर तो दो ही थे लेकिन जब विस्तार में जाएं तो उसकी कोई सीमा नहीं है ।

विदेशी भाई-बहनों से मिलते समय अव्यक्त बापदादा ने इन्हीं दो अक्षरों को पत्र में लिखने की सलाह दी है । बाबा कहते हैं—विस्तार पूर्वक पत्र लिखने की अपेक्षा लिखो 'ओ० के०' (O.K.) । इन्हीं दो अक्षरों में सब कुछ समाया हुआ है । ट्रक, मोटर, गाड़ी, स्कूटर, वाले नहीं जानते थे कि इस ओ० के० शब्द का अर्थ क्या है ? हम और आप भी नहीं जानते थे, लेकिन प्यारे बाबा ने इनका अर्थ बता कर मानो चलते-फिरते हमें परमात्मा की याद में टिका दिया ।

शायद आपके मन में कुलमुलाहट होगी कि यदि गाड़ी चलाते समय इन सब झमेलों में खो जाएंगे तो दुर्घटना हो सकती है या मार्ग से भटक सकते हैं । इस सम्बन्ध में मेरा अनुभव है कि जब हम बाबा की याद में होते हैं तो दुर्घटना या सुघटना की जिम्मेदारी भी बाबा पर ही छोड़ दें । वह हर क्षण, हर जगह, हर परिस्थिति में अपने बच्चों की रक्षा करता है । यदि आप उसकी याद में खो जाते हैं तो वह आपकी जिम्मेदारी भी पूरी करता है । यह हो ही नहीं सकता कि आप मीठे बाबा की मीठी याद में खो जाएं तो आप रास्ता भटक जाएंगे या दुर्घटनाग्रस्त हो जाएंगे । भला आप बाप की गोद में हों तो वह पल-पल आपकी रक्षा नहीं करेगा तो कौन करेगा ? परमात्मा को याद करके देखिए । पहले भी आप 'ओ० के०', 'टा-टा' शब्दों को पढ़ते थे और अब उसी 'ओ० के०' को नए परिवेश में देखिए, बाबा की याद के साथ जोड़िए तो आप चलते-चलते ही अतीन्द्रिय सुख के झूले में झूलने लगेंगे, मस्ती में नाच उठेंगे ।

अब टा-टा शब्द के अर्थ पर विचार करते हैं । 'टा-टा' (TA-TA) शब्द में दो बार 'टा' अक्षर का प्रयोग हुआ है । 'टी' (T)से ट्रान्सफर (**Transfer**) अर्थात् त्याग और 'ए' (A)से 'अथॉरिटी' (**Authority**) बनता है । यानी बाबा ने हम बच्चों को न केवल त्याग करना सिखाया अपितु दूसरों के सामने 'अथॉरिटी' बना कर पेश किया है । यदि किसी के त्याग की अथॉरिटी देखनी है तो ब्रह्माकुमार/ब्रह्माकुमारियों को देखो, ब्राह्मण बच्चों को देखो । हम ब्रह्मा-वत्सों को देखकर दूसरे सीखते हैं । फिर बाबा इससे भी आगे ले जाते हैं । बाबा कहते हैं – 'त्याग का भी त्याग करो ।' यानी दुनिया वालों के लिए तुम बच्चे 'अथॉरिटी' हो लेकिन अपने परिवार के सामने त्याग की अथॉरिटी का भी त्याग करो । इसलिए 'टा-टा' शब्द में 'टा' शब्द का प्रयोग दो बार किया जाता है ।

'टा-टा' के प्रयोग वाले अर्थ में भी जाएँ तो भी वह हम पर ही लागू होता है । यानी जब कोई एक दूसरे से विदा लेता है तो हाथ हिला कर 'टा-टा' करता है अर्थात् विदाई का संकेत करता है । आज तो घर में छोटा बच्चा भी टा-टा करना सीख जाता है । आइऐ हम भी विदाई लें और बुराइयों (माया) से टा-टा……करें । यदि माया को टा-टा……कर दिया तो 'ओ० के०' अपने आप में सम्पूर्ण प्राप्ति का साधन बन जाएगा । आप चलते-फिरते, खाते-पीते ओ० के० में खो जाइए और माया को 'टा-टा' कर दीजिए, फिर देखिए, किस प्रकार आप अतीन्द्रिय सुख का आनन्द लेते हैं !

जगदीश चन्द हसीजा, मुख्य सम्पादक, ब्र० कु० आत्म प्रकाश, सम्पादक, बी ९/१९ कृष्णानगर, दिल्ली द्वारा सम्पादन तथा ओम शान्ति प्रैस, कृष्णानगर, देहली-५१ से छपवाया Regd No. 10563/65-D. (E)—70